संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी

अंक : १३८
जून २००४
ज्येष्ठ-आषाढ
वि.सं. २०६१
मूल्य : रु. ५-००

गुरुपूर्णिमा
२ जुलाई
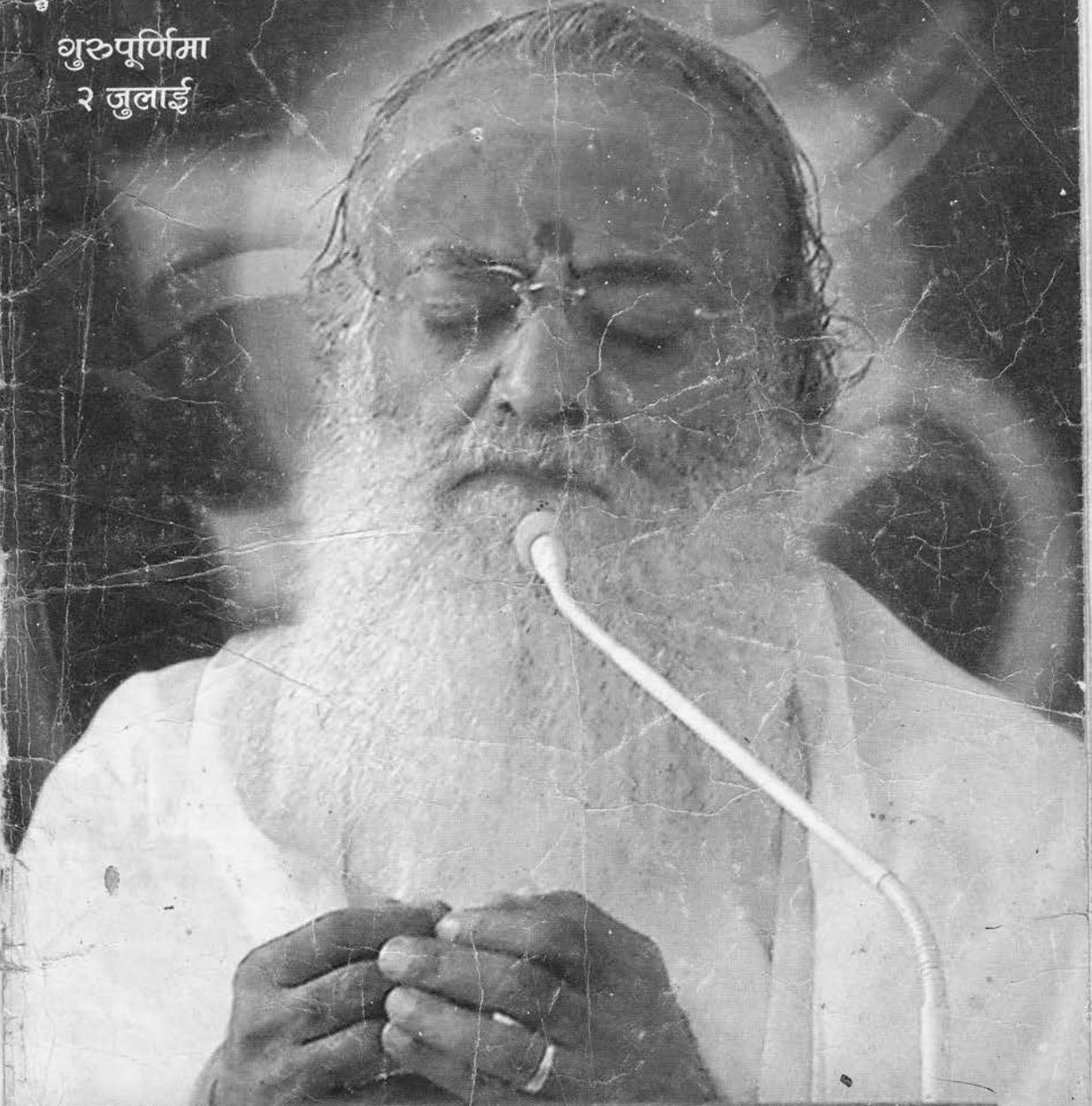
सद्गुरु के प्रेम और ज्ञान की गंगा में बारंबार डुबकी लगाने हेतु प्रोत्साहन देनेवाला पर्व है - 'गुरुपूर्णिमा'

← पूज्यश्री से आशीर्वाद पाते हुए केन्द्रीय वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री श्री कमलनाथ।

सिंहस्थ कुंभ, उज्जैन में पूज्यश्री की अमृतवाणी का लाभ लेते हुए बायें से 'साँईं टेऊँराम संस्थान, प्रेमप्रकाश मंडल, जयपुर' के परम अध्यक्ष व हरिद्वार मंडल के अध्यक्ष तथा पाकिस्तान के 'संत सतराम धाम' के गादीसर। →

सिंहस्थ कुंभ, उज्जैन के अवसर पर पूज्यश्री की भक्ति, योग और ज्ञान की त्रिवेणी में लाखों पुण्यात्मा सराबोर हुए।
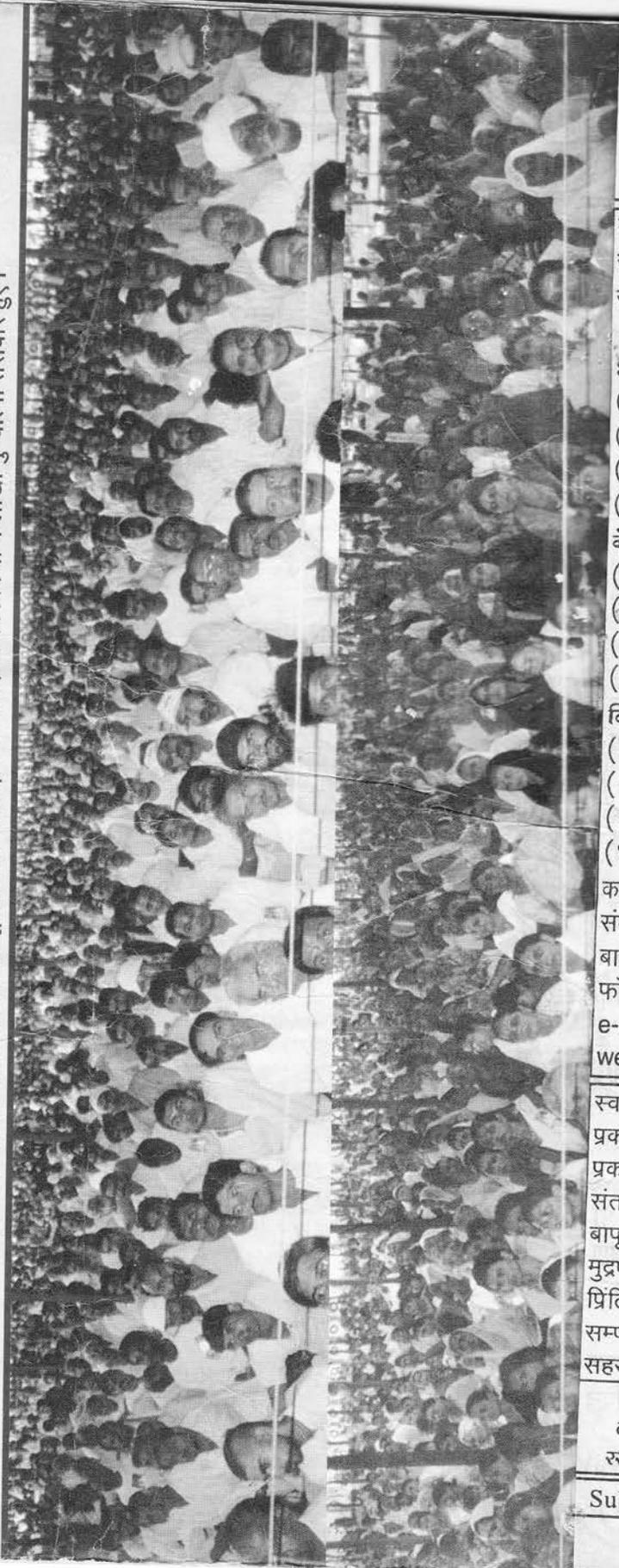
ऋषि प्रसाद

वर्ष : १४ अंक : १३८
जून २००४ मूल्य : रु. ५-००
ज्येष्ठ-आषाढ़, वि.सं.२०६१

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिकः रु. २००/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिकः रु. ३००/-
(४) आजीवन : रु. ७५०/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिकः US $ 80
(४) आजीवन : US $ 200

कार्यालय **'ऋषि प्रसाद'** श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site: www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : कौशिक वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-३८०००५.
मुद्रण स्थल : हार्दिक वेबप्रिंट, राणीप और विनय प्रिंटिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : कौशिक वाणी
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें।

अनुक्रम

*** पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग ***

सोनी चैनल पर **'संत आसाराम वाणी'** प्रतिदिन सुबह ७-०० बजे
साधना चैनल पर 'संत श्री आसारामजी बापू की सत्संग-सरिता' रोज रात्रि ९-०० बजे
आस्था चैनल पर 'संत श्री आसारामजी बापू की अमृतवाणी' सुबह ८-०० तथा दोप. २-३० बजे
संस्कार चैनल पर 'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २-०० बजे तथा रात्रि ९-४० बजे
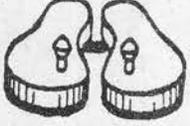
परा श्रीपादुकास्मृतिः

श्री देव्युवाच

कुलेश श्रोतुमिच्छामि पादुका भक्तिलक्षणम् ।
आचारमपि देवेश वद मे करुणानिधे ॥

ईश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
तस्य श्रवणमात्रेण भक्तिराशु प्रजायते ॥
कोटिकोटिमहादानात् कोटिकोटिमहाव्रतात् ।
कोटिकोटिमहायज्ञात् परा श्रीपादुकास्मृतिः ॥
कोटिकोटिमंत्रजापात् कोटितीर्थावगाहनात् ।
कोटिदेवार्चनाद्देवि परा श्रीपादुकास्मृतिः ॥
महारोगे महोत्पाते महादोषे महाभये ।
महापदि महापापे स्मृता रक्षति पादुका ॥
दुराचारे दुरालापे दुःसंगेदुष्प्रतिग्रहे ।
दुराहारे च दुर्बुद्धौ स्मृता रक्षति पादुका ॥
तेनाधीतं स्मृतं ज्ञातम् इष्टं दत्तंच पूजितम् ।
जिह्वाग्रे वर्त्तते यस्य सदा श्रीपादुकास्मृतिः ॥
सकृत् श्रीपादुकां देवि यो वा जपति भक्तितः ।
स सर्वपापरहितः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥
शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि भक्त्या स्मरति पादुकाम् ।
अनायासेन धर्मार्थकाममोक्षान् लभते सः ॥
श्रीनाथचरणाम्भोजं यस्यां दिशि विराजते ।
तस्यां दिशि नमस्कुर्यात् भक्त्या प्रतिदिनं प्रिये ॥

अर्थ : श्रीदेवी बोलीं : ''हे कुलेश (कुलार्णव तंत्र के प्रधान देव भगवान शिव का एक नाम) ! मैं श्री गुरु-चरणपादुकाओं की भक्ति के लक्षण सुनना चाहती हूँ । हे देवेश ! हे करुणानिधे ! आप इसके आचार-व्यवहार भी कहिये ।''

भगवान शंकर बोले : ''हे देवी ! जो तुमने मुझसे पूछा वह कहता हूँ, सुनो । जिसके सुननेमात्र से शीघ्र ही भक्ति उत्पन्न होती है ।

करोड़ों-करोड़ों महा दानों, करोड़ों-करोड़ों महा व्रतों एवं करोड़ों-करोड़ों महा यज्ञों से श्री गुरु-चरणपादुकाओं का स्मरण श्रेष्ठ है । (जगजाहिर है कि भरतजी भगवान श्रीरामचन्द्रजी की चरणपादुकाओं का पूजन-स्मरण कर लाभान्वित हुए थे ।)

हे देवी ! करोड़ों-करोड़ों मंत्रों के जाप से, करोड़ों तीर्थों में अवगाहन करने से, करोड़ों देवताओं का अर्चन करने से भी श्री गुरु-चरणपादुकाओं का स्मरण श्रेष्ठ है ।

महारोग, महा-उत्पात, महादोष, महाभय, महा-आपदा तथा महापाप में श्री गुरु-चरणपादुकाओं का स्मरण रक्षा करता है ।

दुराचार, दुरालाप (अशिष्ट वाणी-प्रयोग), कुसंग, दुष्ट संग्रह, दुराहार और दुर्बुद्धि (इन दोषों) में श्री गुरु-चरणपादुकाओं का स्मरण रक्षा करता है ।

जिसकी जिह्वा के अग्र भाग पर श्री गुरु-चरणपादुकाओं का स्मरण सदैव रहता है (जो सदैव गुरु-स्तुति करता है, गुरुनाम का जप करता है), उसके द्वारा सब शास्त्र पढ़ लिये गये, सब ग्रंथ स्मरण कर लिये गये, उसने सब कुछ जान लिया, सब इष्टार्चन कर लिये, सब दान दे दिये व सब पूजन-आराधन पूर्ण कर लिये ।

हे देवी ! जो श्री गुरु-चरणपादुकाओं की स्थापना करके भक्तिभावपूर्वक उनकी पूजा करता है, वह सब पापों से मुक्त होकर परम गति को पाता है ।

पवित्र अथवा अपवित्र अवस्था में भी जो श्री गुरु-चरणपादुकाओं का भक्तिभाव से स्मरण करता है, वह अनायास ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष - इस पुरुषार्थ-चतुष्टय को प्राप्त करता है ।

हे प्रिये ! श्री नाथ (या गुरुदेव) के चरणकमल जिस दिशा में विराजते हैं, उस दिशा को प्रतिदिन भक्तिपूर्वक नमस्कार करना चाहिए ।''

(कुलार्णव तंत्र, द्वादश उल्लास)

एक पुनीत पर्व

[व्यासपूर्णिमा : २ जुलाई]

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

प्रत्येक उत्सव समुल्लास का एक पर्व है। भारतीय संस्कृति ने उत्सवों को संस्कारों की रंग-सुगन्ध से भी समृद्ध बनाया है। व्यासपूर्णिमा ऐसा ही एक संस्कार-सौरभ फैलानेवाला पुनीत पर्व है।

ऋषि मंत्रद्रष्टा थे। अलग-अलग ऋषि तपस्या-ध्यान द्वारा मंत्रवेत्ता बने। इन सब मंत्रों का संकलन महर्षि व्यास ने किया। उन्होंने वेदमंत्रों के रहस्यों को सुगम बनाया और मानव-जीवन को समर्थ एवं समृद्ध बनाने हेतु वेदमंत्रों की धारा प्रवाहित की। अतः वे 'वेदव्यास' नाम से पहचाने गये। उनकी सारस्वत्य साधना के अभिवादन के लिए आषाढ़ी पूर्णिमा को 'व्यासपूर्णिमा' के नाम से मनाया जाता है।

अपने आत्मस्वरूप का ज्ञान पा लेने के अपने कर्तव्य की याद दिलानेवाला, मन को दैवी गुणों से विभूषित करनेवाला, सद्‌गुरु के प्रेम एवं ज्ञान की गंगा में गोता मारने के लिए फिर-फिर से प्रोत्साहित करनेवाला पर्व है - गुरुपूर्णिमा। भक्त, ऋषि, महर्षि, योगी और ज्ञानी ही नहीं, मुक्ति चाहनेवाले यक्ष, गंधर्व, देवता आदि भी उत्साहपूर्ण हृदय से इस शुभ, मंगल तिथि का स्वागत करते हैं।

भगवान वेदव्यास ने वेदों का संकलन एवं विभाजन किया। इसीलिए देवताओं ने इस शुभ दिन व्यासजी का पूजन किया। इसी दिन से व्यासपूजा की परंपरा चली आयी है। इस पूर्णिमा के दिन जो शिष्य अपने ब्रह्मवेत्ता सद्‌गुरु की शरण में पहुँचकर श्रद्धा-भक्ति एवं संयम से उनका पूजन करता है, उसे वर्षभर के पर्व मनाने का फल मिल जाता है।

महर्षि व्यास की ही कृपा से हमें आज शास्त्र-पुराण आदि पढ़ने-समझने को मिल रहे हैं। इसीलिए हमें शास्त्र-पुराण-उपनिषद् आदि पढ़ानेवाले, उनका गूढ़ अर्थ अंतर में प्रकाशित करनेवाले, हृदय की अज्ञान-ग्रंथि का भेदन करके जीव-ब्रह्म की एकता करानेवाले और अपने आत्मस्वरूप में निमग्न होने की कला बतानेवाले सद्‌गुरु को ही व्यास मानकर हम आदर से, हृदयपूर्वक उनकी पूजा करते हैं।

गुरुपूर्णिमा समर्पण का पर्व है, एक आध्यात्मिक महोत्सव है। इस पर्व पर शिष्य सद्‌गुरु की प्रसन्नता हेतु तन-मन-धन सब कुछ अर्पण करता है। 'गुरु तो शिष्य का शीश माँगते हैं।'- ऐसी एक लोकोक्ति है, लेकिन यहाँ 'शीश' मात्र एक रूपक है। इसका अर्थ यह है कि शिष्य गुरु के आगे अहंकाररूपी शीश अर्पण करके, उनकी बिनशरती शरणागति स्वीकार कर तत्काल उनके अनुभव को अपना अनुभव बना ले। इसीलिए सभी गुरुभक्तों, संतों, योगियों, महापुरुषों एवं शास्त्रों ने गुरु-महिमा का गान करके सद्‌गुरु के ऋण से उऋण होने के प्रयास को प्रमाणित किया है।

गुरु-महिमा अपरंपार है। मानव भले सभी तीर्थों की यात्रा करे, सभी देवताओं की पूजा करे, दान करे, यज्ञ करे लेकिन जब तक सद्‌गुरु की पूजा नहीं करता, तब तक उसका दूसरा सब किया-कराया अधूरा ही है और यदि सब कुछ छोड़कर भी सद्‌गुरु के चरणों में चित्त लगाये, गुरुपूजा में तल्लीन बने तो दूसरे विधि-निषेधों को वह पार कर जाता है। यहाँ इस पंक्ति का स्मरण प्रेरक है :

हरिहर आदिक जगत में पूज्य देव जो कोय।
सद्‌गुरु की पूजा किये सबकी पूजा होय॥

गुरुओं में एक आदर्श के तौर पर महर्षि व्यास का आदरणीय स्थान है। इसीलिए भी गुरुपूजा को

'व्यासपूजा' कहा जाता है ।

गुरुपूजा एवं गुरु-महिमा को सिर्फ हमारे वैदिक धर्म ने ही स्वीकार किया है, ऐसी बात नहीं है । विश्व के सभी धर्मों जैसे - सिख, ईसाई, जैन; बौद्ध आदि में भी गुरु-महिमा को स्वीकार किया गया है । जिस प्रकार प्रेम, दया, मानवता जैसे तत्त्व सभी धर्मों में समान हैं, ऐसे ही गुरु-महिमा भी सब धर्मों में समान है । भगवान श्रीमद् आद्य शंकराचार्यजी ने तो यहाँ तक कहा है कि ''सर्व संपत्ति, भोग, विद्या, तप, गौरव आदि सब मिल जायें अथवा पूर्ण विरक्ति भी मिल जाय लेकिन गुरुचरणों में श्रद्धा-भक्तिपूर्वक चित्त को न लगाया तो दूसरा सब मिला हुआ व्यर्थ है ।''

मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥

संसार के सभी सम्बंध स्वार्थयुक्त हैं । पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-भाई, सेठ-नौकर आदि सब सम्बंधों की जंजीरें स्वार्थ की ही उपज हैं, लेकिन सद्गुरु एवं सत्शिष्य का सम्बंध निःस्वार्थ है ।

भोलेबाबा ने कहा है :

सगे सम्बंधी स्वार्थ के हैं स्वार्थ का संसार है ।
निःस्वार्थ सद्गुरुदेव हैं सच्चे वही हितकार हैं ॥
ईश्वर-कृपा होवे तभी सद्गुरु-कृपा जब होय है ।
सद्गुरु-कृपा बिन ईश भी नहीं मैल मन का धोय हैं ॥

सद्गुरु-सत्शिष्य के अमर सम्बंध का रसास्वादन वही कर सकता है, जिसके हृदय में सद्गुरु-प्रेम बसा है, गुरुभक्ति ने घर किया है । चन्द्र के दर्शन का सुख तो चकोर ही जानता है । दीपक के स्पर्श के सुख को पतंग ही जानता है, ऐसे ही सद्गुरुदेव के दर्शन, स्पर्श, पूजन, अर्चन का महत्त्व क्या है ? - इस रहस्य को एक सच्चा सद्गुरु-भक्त ही जानता है ।

गुरुपूजन करते समय रोम-रोम पुलकित हो जाय, हृदय गद्‌गद हो जाय, नेत्रों से प्रेम के आँसू छलकने लगें, मन संकल्प-विकल्प छोड़कर गुरुमूर्ति का ध्यान करे, वाणी स्तब्ध हो जाय, 'धन्य गुरु ! जय गुरु !' के भाव उमड़ पड़ें एवं अहंभाव की दक्षिणा गुरुचरणों में अर्पित हो जाय, तब वह जिज्ञासु, वह सत्शिष्य कृतकृत्य हो जाता है ।

सद्गुरु पूर्ण होते हैं इसीलिए उनकी पूर्णिमा मनायी जाती है । वे अंतःकरण के अंधकार को दूर करते हैं तथा आत्मज्ञान की युक्तियाँ बताते हैं । दीक्षा के दिन से सद्गुरु शिष्य के अंतःकरण में निवास करते हैं । वे एक ऐसी जगमगाती ज्योति हैं जो शिष्य की बुझी हुई हृदय-ज्योति को प्रज्वलित करती है, शिष्य के भवरोग को दूर करती है । वे एक ऐसे माली हैं, जो जीवनरूपी बगिया को हरा-भरा एवं महकता हुआ कर देते हैं । वे अभेद का रहस्य बताकर भेद में अभेद के दर्शन करने की युक्ति सिखाते हैं ।

शिष्य की योग्यता और सद्गुरु की कृपा का सम्मिलन ही मोक्ष का द्वार है । सद्गुरु पूर्णिमा के चन्द्र की नाईं शीतल एवं अंधकारमय रात्रि में प्रकाश करनेवाले हैं । इसीलिए भी उनकी पूजा पूर्णिमा के दिन की जाती है ।

इस दुःखालय संसार में एकमात्र गुरुकृपा ही ऐसा अमूल्य खजाना है, जो मनुष्य को आवागमन के विकट कालचक्र से मुक्ति दिलाता है । जिसे गुरुकृपा मिल गयी है और जो उसे पूर्णरूपेण पचा सका है वह धन्य है !

सद्गुरु जिसे मिल जाय, सो ही धन्य है जगमन्य है ।
सुर सिद्ध उसको पूजते, ता सम न कोउ अन्य है ॥
अधिकारी हो गुरुदेव से, उपदेश जो नर पाय है ।
भोला तरे संसार से, नहीं गर्भ में फिर आय है ॥

जीवन में गुरु की आवश्यकता सबसे ज्यादा है । मित्र, पुत्र, भाई या जीवनसाथी एवं धन, कला या आरोग्य से भी गुरु विशेष अनिवार्य हैं । गुरु शिष्य को नया जन्म देते हैं । साधना का मार्ग बताते हैं एवं ज्ञान की प्राप्ति कराते हैं । सच्चे गुरु शिष्य की सुषुप्त जीवनशक्ति को जागृत करते हैं । उसे योग की शिक्षा देते हैं, ज्ञान की मस्ती देते हैं, भक्ति की भाव-सरिता में अवगाहन कराते हैं, कार्य करते हुए भी निष्कामता से रहना सिखाते हैं और इसी शरीर में अशरीरी आत्मा का ज्ञान कराकर जीते-जी मुक्ति दिलाते हैं ।

गुरु त्याग कराते हैं तो केवल जीवत्व का, द्वेष का, मेरे-तेरे की मिथ्या मान्यताओं का । क्रोध करते हैं तो अज्ञान-दृष्टि पर, भेदयुक्त व्यवहार पर । ईर्ष्या करते हैं तो केवल स्थूल शरीर में आबद्ध हमारे जीवभाव से ।

लेकिन ऐसे सद्‌गुरु मिलना अति दुर्लभ है। कितने ही जन्मों के पुण्य एक साथ फल देने को तत्पर होते हैं तब ऐसे ब्रह्मनिष्ठ सद्‌गुरु का सान्निध्य प्राप्त होता है।

दुर्लभो मानुषो देहो
देहीनां क्षणभंगुरः।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये
वैकुण्ठप्रिय दर्शनम्॥

ऐसे सद्‌गुरु की यथाशक्ति सेवा-पूजा करने एवं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का दिन है - गुरुपूर्णिमा। वेदव्यासजी आदिगुरु थे, इसलिए उनके नाम से गुरुपूजा को व्यासपूजा एवं आषाढ़ी पूर्णिमा को व्यासपूर्णिमा नाम मिला।

व्यासपूर्णिमा वर्षा ऋतु के आरंभ में आती है। जैसे सूर्य के ताप से तप्त भूमि को वर्षा से शीतलता एवं फसल पैदा करने की योग्यता मिलती है, ऐसे ही गुरुचरणों में उपस्थित साधकों को ज्ञान, शांति, भक्ति, योग आदि प्राप्त करने की योग्यता मिलती है।

आज के दिन से चतुर्मास तक परिव्राजक संन्यासी एक ही स्थान पर रहकर ज्ञानगंगा बहाते हैं। आश्रम या मठ धारी गुरु, आचार्य अपने शिष्यवर्ग को एकत्रित करके शास्त्रों का ज्ञान देते हैं, उसका पुनरावर्तन कराते हैं तथा साधना के नये संकल्प कराते हैं।

आध्यात्मिक पाठशालाएँ आज के दिन से ही प्रारंभ होती हैं। पुरोहित अपने यजमान को आज के दिन से ही व्रत, अनुष्ठान, यज्ञ आदि का संकल्प कराते हैं। साधक आज के दिन से जप, तप, स्वाध्याय, अनुष्ठान आदि का संकल्प करता है एवं चतुर्मास के दौरान हो सके उतना आध्यात्मिक खजाना बटोर लेने में कटिबद्ध होता है।

इस तरह व्यासपूर्णिमा पर्व साधना हेतु नयी प्रेरणा देनेवाला, गुरु के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने की प्रेरणा देनेवाला और अपने परम कृपालु गुरु के तत्त्व को आत्मसात् करने हेतु शुभकामना देनेवाला पर्व है। ❋

गुरुभक्त मिलारेपा

तिब्बत में करीब ८५० वर्ष पहले एक बालक का जन्म हुआ। उसका नाम रखा गया मिलारेपा। सात वर्ष की उम्र में उसके पिता का देहांत हो गया। चाचा और बुआ ने उनकी सारी मिल्कियत हड़प ली। अपनी छोटी बहन और माता सहित मिलारेपा को खूब दुःख सहना पड़ा। अपनी मिल्कियत पुनः पाने के लिए उसकी माता ने कई प्रयत्न किये लेकिन चाचा और बुआ ने उसके सारे प्रयत्न निष्फल कर दिये। वह तिलमिला उठी। उसके मन से किसी भी तरह से इस बात का रंज नहीं जा रहा था।

एक दिन की बात है। तब मिलारेपा की उम्र करीब १५ वर्ष थी। वह गुनगुनाते हुए घर लौटा। गाने की आवाज सुनकर उसकी माँ एक हाथ में लाठी और दूसरे हाथ में राख लेकर बाहर आयी और मिलारेपा के मुँह पर राख फेंककर लाठी से उसे बुरी तरह पीटते हुए बोली : ''कैसा कुपुत्र जन्मा है तू! अपने बाप का नाम लजा दिया।''

उसे पीटते-पीटते माँ बेहोश हो गयी। होश आने पर फिर से फटकार बरसाते हुए मिलारेपा से बोली : ''धिक्कार है तुझे! दुश्मनों से वैर लेना भूलकर गाना सीखा? सीखना हो तो ऐसा कुछ सीख, जिससे उनका वंश ही खत्म हो जाय।''

बस... मिलारेपा के हृदय में चोट लग गयी। घर छोड़कर उसने तंत्रविद्या सिखानेवाले गुरु को खोज निकाला और पूरी निष्ठा एवं भाव से सेवा करके उनको प्रसन्न किया। उनसे दुश्मनों को

खत्म करने एवं हिमवर्षा करने की विद्या सीख ली। इसका प्रयोग कर उसने अपने चाचा और बुआ की खेती एवं उनके कुटुंबियों को नष्ट कर डाला। चाचा और बुआ को उसने जिंदा रखा, ताकि वे तड़प-तड़पकर दुःख भोगते हुए मरें। यह देखकर लोग मिलारेपा से खूब भयभीत हो गये।

समय बीता। मिलारेपा के हृदय की आग थोड़ी शांत हुई। अब उसे बदला लेने की वृत्ति पर पश्चाताप होने लगा। ऐसे में उसकी एक लामा के साथ भेंट हुई। उसने सलाह दी : ''तुझे अगर विद्या ही सीखनी है तो एकमात्र योगविद्या ही सीख। भारत से यह योगविद्या सीखकर आये हुए एकमात्र गुरु हैं - मारपा।''

योगविद्या जाननेवाले गुरु के बारे में सुनते ही उसका मन उनके दर्शन के लिए अधीर हो गया। मिलारेपा में लगन तो थी ही, साथ में दृढ़ता भी थी और तंत्रविद्या सीखकर उसने गुरु के प्रति निष्ठा भी साबित कर दिखायी थी। एक बार हाथ में लिया हुआ काम पूरा करने में वह दृढ़निश्चयी था। उसमें भरपूर आत्मविश्वास था। वह तो सीधा चल पड़ा मारपा को मिलने।

रास्ता पूछते-पूछते, निराश हुए बिना मिलारेपा आगे-ही-आगे बढ़ता गया। रास्ते में एक गाँव के पास खेत में उसने किसी किसान को देखा, उसके पास जाकर मारपा के बारे में पूछा। किसान ने कहा : ''मेरे बदले में तू खेती कर तो मैं तुझे मारपा के पास ले जाऊँगा।''

मिलारेपा उत्साह से सहमत हो गया। थोड़े दिनों के बाद किसान ने रहस्योद्घाटन किया कि वह खुद ही मारपा है।

मिलारेपा ने गुरुदेव को भावपूर्वक प्रणाम किया और अपनी आपबीती कह सुनायी। उसने स्वयं के द्वारा हुए मानव-संहार की बात भी कही। बदले की भावना से किये हुए पाप के बारे में बताकर पश्चाताप किया। मिलारेपा की निखालिस स्वीकारोक्ति से गुरु का मन प्रसन्न हुआ, लेकिन उन्होंने अपनी प्रसन्नता को गुप्त ही रखा।

अब मिलारेपा की परीक्षा शुरू हुई। गुरु के प्रति प्रीति, श्रद्धा, निष्ठा एवं दृढ़ता की कसौटियाँ प्रारंभ हुईं।

गुरु मारपा मिलारेपा के साथ खूब कड़क व्यवहार करते, जैसे उनमें दया की एक बूँद भी न हो। लेकिन मिलारेपा अपनी गुरुभक्ति में पक्का था। वह गुरु के बताये प्रत्येक कार्य को खूब तत्परता एवं निष्ठा से करने लगा।

कुछ महीने बीते, फिर भी गुरु ने मिलारेपा को कुछ ज्ञान नहीं दिया। मिलारेपा ने काफी नम्रता से गुरुजी के समक्ष ज्ञान के लिए प्रार्थना की। गुरुजी भड़क उठे : ''मैं अपना सर्वस्व देकर भारत से यह योगविद्या सीखकर आया हूँ। यह तेरे जैसे दुष्ट के लिए है क्या ? तूने जो पाप किये हैं वे जला दे, तो मैं तुझे यह विद्या सिखाऊँ। जो खेती तूने नष्ट की है वह उनको वापस दे दे, जिनको तूने मार डाला है उन सबको जीवित कर दे... ''

यह सुनकर मिलारेपा खूब रोया। फिर भी वह हिम्मत नहीं हारा, उसने गुरु की शरण नहीं छोड़ी।

कुछ समय और बीता। मारपा ने एक दिन मिलारेपा से कहा : ''मेरे पुत्र के लिए एक पूर्वमुखी गोलाकार मकान बना दे, लेकिन याद रखना उसे बनाने में तुझे किसीकी मदद नहीं लेनी है। मकान में लगनेवाली लकड़ी भी तुझे ही काटनी है, गढ़नी है और मकान में लगानी है।''

मिलारेपा खुश हो गया कि 'चलो, गुरुजी की सेवा करने का मौका तो मिल ही रहा है न!' उसने बड़े उत्साह से कार्य शुरू कर दिया। वह स्वयं ही लकड़ियाँ काटता और उन्हें तथा पत्थरों को अपनी पीठ पर उठा-उठाकर लाता। वह स्वयं ही दूर से पानी भरकर लाता। किसीकी भी मदद लेने की मनाई थी न! गुरु की आज्ञा पालने में वह पक्का था। मकान का आधा काम तो हो गया।

एक दिन गुरुजी मकान देखने आये। वे गुस्से में बोले : ''धत् तेरे की! ऐसा मकान नहीं चलेगा। तोड़ डाल इसको और याद रखना, जो चीज जहाँ से लाया है, उसे वहीं रखना।''

मिलारेपा ने बिना किसी फरियाद के गुरुजी की आज्ञा का पालन किया। फरियाद का 'फ'

तक मुँह में नहीं आने दिया। कार्य पूरा किया। फिर गुरुजी ने दूसरी जगह बताते हुए कहा : ''हाँ, यह जगह ठीक है। यहाँ पश्चिम की ओर द्वारवाला अर्धचन्द्राकार मकान बना दे।''

मिलारेपा पुनः काम में लग गया। काफी मेहनत के बाद आधा मकान पूरा हुआ। तब गुरुजी फिर से फटकारते हुए बोले : ''कैसा भद्दा लगता है यह ! तोड़ डाल और एक-एक पत्थर अपनी जगह पर वापस रख आ।''

बिल्कुल न चिढ़ते हुए उसने गुरु के शब्द झेल लिये। मिलारेपा की गुरुभक्ति गजब की थी !

थोड़े दिन बाद गुरुजी ने फिर से नयी जगह बताते हुए हुक्म किया : ''यहाँ त्रिकोणाकार मकान बना दे।''

मिलारेपा ने पुनः काम चालू कर दिया। पत्थर उठाते-उठाते उसकी पीठ एवं कंधे छिल गये थे। फिर भी उसने अपनी पीड़ा के बारे में किसीको भी नहीं बताया। त्रिकोणाकार मकान बँधकर पूरा होने आया, तब गुरुजी ने फिर से नाराजगी व्यक्त करते हुए कहा : ''यह ठीक नहीं लग रहा है। इसे तोड़ डाल और सभी पत्थरों को अपनी मूल जगह पर रख दे।''

इस स्थिति में भी मिलारेपा के चेहरे पर असंतोष की एक भी रेखा नहीं दिखी। गुरु के आदेश को प्रसन्नचित्त से शिरोधार्य कर उसने सभी पत्थरों को अपनी-अपनी जगह व्यवस्थित रख दिया।

इस बार एक टेकरी पर जगह बताते हुए गुरु ने कहा : ''यहाँ नौ खंभेवाला चौरस मकान बना दे।''

गुरुजी ने तीन-तीन बार मकान बनवाकर तुड़वा डाले थे। मिलारेपा के हाथ एवं पीठ पर छाले पड़ गये थे। शरीर की रग-रग में पीड़ा हो रही थी। फिर भी मिलारेपा गुरु से फरियाद नहीं करता कि 'गुरुजी ! आपकी आज्ञा के मुताबिक ही तो मकान बनाता हूँ। फिर भी आप मकान पसंद नहीं करते, तुड़वा डालते हो और फिर से दूसरा बनाने को कहते हो। मेरा परिश्रम एवं समय व्यर्थ जा रहा है।'

मिलारेपा तो फिर से नये उत्साह के साथ काम में लग गया। जब मकान आधा तैयार हो गया, तब मारपा ने फिर से कहा : ''इसके पास में ही बारह खंभेवाला दूसरा मकान बनाओ।'' कैसे भी करके बारह खंभेवाला मकान भी पूरा होने आया, तब मिलारेपा ने गुरुजी से ज्ञान के लिए प्रार्थना की।

गुरुजी ने मिलारेपा के सिर के बाल पकड़कर उसको घसीटा और लात मारते हुए यह कहकर निकाल दिया कि 'मुफ्त में ज्ञान लेना है ?'

दयालु गुरुमाता (मारपा की पत्नी) से मिलारेपा की यह हालत देखी नहीं गयी। उसने मारपा को दया करने की विनती की लेकिन मारपा ने कठोरता न छोड़ी।

इस तरह मिलारेपा गुरुजी के ताने भी सुन लेता व मार भी सह लेता और अकेले में रो लेता लेकिन उसकी ज्ञानप्राप्ति की जिज्ञासा के सामने ये सब दुःख कुछ मायना नहीं रखते थे।

एक दिन तो उसके गुरु ने उसे खूब मारा। अब मिलारेपा के धैर्य का अंत आ गया। बारह-बारह साल तक अकेले, अपने हाथों से मकान बनाये, फिर भी गुरुजी की ओर से कुछ नहीं मिला। अब मिलारेपा थक गया और घर की खिड़की से कूदकर बाहर भाग गया।

गुरुपत्नी यह सब देख रही थी। उसका हृदय कोमल था। मिलारेपा की सहनशक्ति के कारण उसे मिलारेपा के प्रति सहानुभूति थी। वह मिलारेपा के पास गयी और उसे समझाकर चोरी-छिपे दूसरे गुरु के पास भेज दिया। साथ में बनावटी संदेश-पत्र भी लिख दिया कि 'आनेवाले युवक को ज्ञान दिया जाय।' यह दूसरा गुरु, मारपा का ही शिष्य था। उसने मिलारेपा को एकांत में साधना का मार्ग सिखाया। फिर भी मिलारेपा की प्रगति नहीं हो पायी। मिलारेपा के नये गुरु को लगा कि जरूर कहीं-न-कहीं गड़बड़ है। उसने मिलारेपा को उसकी भूतकाल की साधना एवं अन्य कोई गुरु किये हों तो उसके बारे में बताने को कहा। मिलारेपा ने सब बातें निखालिसता से कह दीं।

नये गुरु ने डाँटते हुए कहा : ''एक बात ध्यान में रख - गुरु एक ही होते हैं और एक ही बार किये जाते हैं। यह कोई सांसारिक सौदा नहीं है कि एक

जगह नहीं जँचा तो चले दूसरी जगह। आध्यात्मिक मार्ग में इस तरह गुरु बदलनेवाला धोबी के कुत्ते की नाईं न तो घर का रहता है न ही घाट का। ऐसा करने से गुरुभक्ति का घात होता है। जिसकी गुरुभक्ति खंडित होती है, उसे अपना लक्ष्य प्राप्त करने में बहुत लम्बा समय लग जाता है। तेरी प्रामाणिकता मुझे जँची। चल, हम दोनों चलते हैं गुरु मारपा के पास और उनसे माफी माँग लेते हैं।'' ऐसा कहकर दूसरे गुरु ने अपनी सारी संपत्ति अपने गुरु मारपा को अर्पण करने के लिए साथ में ले ली। सिर्फ एक लँगड़ी बकरी को ही घर पर छोड़ दिया।

दोनों पहुँचे मारपा के पास। शिष्य द्वारा अर्पित की हुई सारी संपत्ति मारपा ने स्वीकार ली, फिर पूछा : ''वह लँगड़ी बकरी क्यों नहीं लाये ?'' तब वह शिष्य फिर से उतनी दूरी तय करके वापस घर गया। बकरी को कंधे पर उठाकर लाया और गुरुजी को अर्पित की। यह देख गुरुजी खुश हुए। मिलारेपा के सामने देखते हुए बोले : ''मिलारेपा ! मुझे ऐसी गुरुभक्ति चाहिए। मुझे बकरी की जरूरत नहीं थी लेकिन मुझे तुम्हें पाठ सिखाना था।''

मिलारेपा ने भी अपने पास जो कुछ था उसे गुरुचरणों में अर्पित कर दिया। मिलारेपा के द्वारा अर्पित की हुई चीजें देखकर मारपा ने कहा : ''ये सभी चीजें तो मेरी पत्नी की हैं। दूसरे की चीजें तू कैसे भेंट में दे सकता है ?'' ऐसा कहकर उन्होंने मिलारेपा को धमकाया।

मिलारेपा फिर से खूब हताश हो गया। उसने सोचा कि 'मैं कहाँ कच्चा साबित हो रहा हूँ, जो मेरे गुरुजी मुझ पर प्रसन्न नहीं होते ?' उसने मनोमन भगवान से प्रार्थना की और निश्चय किया कि 'इस जीवन में तो गुरुजी प्रसन्न हों, ऐसा नहीं लगता। अतः इस जीवन का ही गुरुजी के चरणों में बलिदान कर देना चाहिए।' ऐसा सोचकर जैसे ही वह गुरुजी के चरणों में प्राणत्याग करने को उद्यत हुआ, तुरंत ही गुरु मारपा समझ गये : 'हाँ, अब चेला तैयार हुआ है।'

मारपा ने खड़े होकर मिलारेपा को गले लगा लिया। मारपा की अमीदृष्टि मिलारेपा पर बरसी। प्यारभरे स्वर में गुरुदेव बोले : ''पुत्र ! मैंने जो तेरी सख्त कसौटियाँ लीं, उनके पीछे एक ही कारण था - तूने आवेश में आकर जो पाप किये थे, वे सब मुझे इसी जन्म में भस्मीभूत करने थे, तेरी कई जन्मों की साधना को मुझे इसी जन्म में फलीभूत करना था। तेरे गुरु को न तो तेरी भेंट की आवश्यकता है न मकान की। तेरे कर्मों की शुद्धि के लिए ही यह मकान बँधवाने की सेवा खूब महत्त्वपूर्ण थी। स्वर्ण को शुद्ध करने के लिए तपाना ही पड़ता है न ! तू मेरा ही शिष्य है। मेरे प्यारे शिष्य ! तेरी कसौटी पूरी हुई। चल, अब तेरी साधना शुरू करें। मिलारेपा दिन-रात सिर पर दीया रखकर आसन जमाये ध्यान में बैठता। इस तरह ग्यारह महीने तक गुरु के सतत सान्निध्य में उसने साधना की। प्रसन्न हुए गुरु ने देने में कुछ बाकी न रखा। मिलारेपा को साधना के दौरान ऐसे-ऐसे अनुभव हुए, जो उसके गुरु मारपा को भी नहीं हो पाये थे। शिष्य गुरु से सवाया निकला। अंत में गुरु ने उसे हिमालय की गहन कंदराओं में जाकर ध्यान-साधना करने को कहा।

अपनी गुरुभक्ति, दृढ़ता एवं गुरु के आशीर्वाद से मिलारेपा ने तिब्बत में सबसे बड़े योगी के रूप में ख्याति पायी। बौद्ध धर्म की सभी शाखाएँ मिलारेपा को मानती हैं। कहा जाता है कि कई देवताओं ने भी मिलारेपा का शिष्यत्व स्वीकार करके अपने को धन्य माना है। तिब्बत में आज भी मिलारेपा के भजन एवं स्तोत्र घर-घर में गाये जाते हैं।

मिलारेपा ने सच ही कहा है : ''गुरु ईश्वरीय शक्ति के मूर्तिमंत स्वरूप होते हैं। उनमें शिष्य के पापों को जलाकर भस्म करने की क्षमता होती है।''

शिष्य की दृढ़ता, गुरुनिष्ठा, तत्परता एवं समर्पण की भावना उसे अवश्य ही सत्‌शिष्य बनाती है, इसका ज्वलंत प्रमाण है मिलारेपा। आज के कहलानेवाले शिष्यों को ईश्वरप्राप्ति के लिए, योगविद्या सीखने के लिए आत्मानुभवी सत्पुरुषों के चरणों में कैसी दृढ़ श्रद्धा रखनी चाहिए इसकी समझ देते हैं - योगी मिलारेपा।

प्राणिमात्र सुखाय प्रवृत्तिः...

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

प्राणिमात्र सुखाय प्रवृत्तिः...

'सब सुख के लिए कोशिश करते हैं।'

सुख भी चार प्रकार का होता है : एक होता है प्रमाद का सुख, दूसरा होता है विषय-सुख, तीसरा होता है भावनामय सुख और चौथा होता है विचार का, ज्ञान का सुख।

सबसे हलका है प्रमाद का सुख। शराब पीकर पड़े रहे अथवा वातानुकूलित वातावरण में पड़े हैं, बिस्तर पर पड़े हैं कि 'हाऽऽऽश... बड़ा सुख है।' यह प्रमाद का सुख है। इसमें थोड़ी तसल्ली तो मिलती है किंतु आयु नष्ट होती है।

सूँघकर, चखकर, देखकर, सुनकर, भोगकर सुखी होने की जो दौड़ है उसे कहते हैं विषय-सुख। व्यक्ति सोचता है : 'मैं राजा बन जाऊँ... मैं बाप बन जाऊँ... मैं पहलवान बन जाऊँ... कहीं जाकर सुखी हो जाऊँ...' बन गये पहलवान फिर क्या ? बन गये बाप फिर क्या ? मनचाही जगह पहुँच गये फिर क्या ? दूर का नहीं सोचते इसीलिए विषय-वासनाओं में खिंचे चले जाते हैं। जो भी व्यक्ति संसार की प्राप्ति करके सुखी होना चाहता है, वह वासना के अधीन होकर अपना समय संसार के खिलौनों में ही खत्म कर देता है।

तीसरा है भावनामय सुख। 'मेरे भगवान जो करते हैं ठीक करते हैं। मेरे प्रभु ! तेरी प्रीति बनी रहे... तेरी भक्ति बनी रहे...' इस प्रकार की भावना से जो सुख मिलता है वह है भावनामय सुख।

एक व्यक्ति को डॉक्टरों ने कह दिया कि 'तुम्हें क्षयरोग (टी.बी.) है।' 'क्षयरोग है... क्षयरोग है...' यह चिंतन करने से क्षयरोग तीसरी स्थिति में पहुँच गया। उसने दवाओं पर लाखों रुपये पानी की तरह बहा दिये, फिर भी ठीक न हुआ। आखिर थक-हारकर सोचने लगा कि 'सारे उपाय कर लिये, अब मैं क्या करूँ ?'

वहाँ से साधुओं की मंडली जा रही थी। उसने साधुओं को प्रणाम करके प्रार्थना की : ''बाबा ! आशीर्वाद मिल जाय।''

बाबा : ''चिंता क्यों करता है ? सीता माना प्रकृति, राम माना आत्मा। यह तो परमात्मा और उसकी प्रकृति का खेल है। तू सीताराम-सीताराम कर।''

शब्द ब्रह्म है। भगवन्नाम में बड़ी ताकत है। वह 'सीताराम-सीताराम' करते-करते क्षयरोग का चिंतन भूल गया। सीताराम की भावना से सुख आने लगा। भावना का सुख बढ़ा तो रोगप्रतिकारक शक्ति भी बढ़ने लगी। उस व्यक्ति को फायदा होने लगा। उसका क्षयरोग तो चला गया, वह व्यक्ति भी घर से चला गया और साधुओं की मंडली में शामिल हो गया।

घरवालों ने आकर उससे कहा : ''तुम पागल हो गये हो।''

उसने कहा : ''बीमार रहकर खटिया पर मरता इससे तो साधुओं के साथ 'सीताराम-सीताराम' करते-करते मरूँगा। इधर मुझे सुख मिलता है, अच्छा लगता है। अब तो मैं आश्रम में ही रहूँगा। संतों के संग से मेरी अकाल मृत्यु टल गयी है, शेष जीवन मैं यहीं बिताऊँगा।''

उसको भावना का सुख मिला। यह ईश्वर-साक्षात्कार का सुख नहीं है किंतु विषय-विकारों के सुख से अच्छा है।

चौथा है विचार का सुख। 'मान मिला... अपमान मिला... सुख आया... दुःख आया... यह सब बीत जायेगा।' इस प्रकार सोचकर सबके साक्षी बन गये। क्रोध आये तो उसके साक्षी बन जायें, चिंता आये तो उसके साक्षी बन जायें, भय आये तो उसके भी साक्षी बन जायें। साक्षीभाव से

ज्ञान का सुख मिलता है।

प्रमाद का सुख लेने से पुण्य नष्ट होता है और पाप की वृद्धि होती है। विषयों का सुख लेने से पुण्य खर्च होता है। भावनामय सुख लेने से पुण्य बढ़ता है। विचार का सुख लेने से 'पुण्य और पाप सब संसार में हैं, आत्मा अमर है, चैतन्य है।'- इस ज्ञान में निष्ठा होती है और यह निष्ठा बढ़ते-बढ़ते नित्य नवीन रस की प्राप्ति कराती है, नित्य नवीन आनंद बढ़ाती है।

उस नित्य नवीन रसस्वरूप परमात्मा को जो जान लेता है उसके पास संसार की चीजें खिंचकर आती हैं। फिर भी वह उनमें फँसता नहीं। वह सत्यबुद्धि से किसी चीज को पकड़ता भी नहीं और उससे घबराकर उसे छोड़ता भी नहीं।

ब्रह्मज्ञान का फल बहुत निराला है। बाहर से तो ज्ञानी खिन्न होते हुए भी दिखेंगे, गुस्सा करते हुए भी दिखेंगे, प्रसन्न होते हुए भी दिखेंगे फिर भी वे ऐसी जगह पर हैं जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

जैसे - रंगशाला में साफ-सफाई करनेवाले आये तब भी वहाँ का दीपक जल रहा है, साजवाले आये तब भी वह जल रहा है, नाचनेवाले आये तब भी जल रहा है, नर्तकी आयी तब भी प्रकाश है, तालियाँ बजीं तब भी प्रकाश है। किसीने टेढ़ी चाल से साज बजाया, लोगों को मजा नहीं आया, गानेवाले का मूड ऑफ हो गया, लोगों ने टमाटर फेंके, पत्थर फेंके, चप्पलें फेंकी और हिप-हिप-हुर्रे करके चले गये तब भी प्रकाश है और रंगमंच खाली हो गया तब भी प्रकाश है। ऐसे ही ज्ञानी महापुरुष सब करते हुए भी सबके साक्षी हैं।

दुःख क्यों होता है ? संसार से सुख लेने की इच्छा ही दुःख को जन्म देती है। परमात्म-सुख की इच्छामात्र से सद्गुण आने लगते हैं। संसारी सुख-सुविधाओं से दुःख दब जाता है। दुःख दब जाना यह उपलब्धि नहीं है। दुःख को उखाड़ फेंकने में ही परम सुख है।

जो सुख-दुःख का कारण अन्य को मानते हैं वे अन्य से दबे रहते हैं, किंतु जो इनका कारण अपने मन की बेवकूफी, आसक्ति और प्रारब्ध को मान लेते हैं वे सुख-दुःख से छूट जाते हैं।

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता।
निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥

(श्री रा.मानस, अयो.का. : ९१.२)

कोई किसीके सुख-दुःख का दाता नहीं है। अपनी-अपनी कल्पना से, भावना से, मान्यताओं से लगता है कि 'इसने सुख दिया... उसने दुःख दिया...' अपने मन में दुःखाकार वृत्ति उत्पन्न नहीं हुई तो उनमें दुःख देने की क्या ताकत है ? अपने मन में सुखाकार वृत्ति उत्पन्न नहीं हुई तो सुख के साधनों की क्या कीमत है ? चित्त में सुखाकार-दुःखाकार वृत्ति उत्पन्न करना - न करना अपने हाथ की बात है।

निर्दोष सुख, परम सुख पाने के लिए दृढ़ संकल्प करें। ऊँचे सुख को, ऊँची शांति को, ऊँचे ज्ञान को पाने के लिए दृढ़ संकल्प करने का नाम है व्रत। दृढ़ संकल्प को पूरा करने में जो कष्ट आते हैं उन्हें सहने का नाम है तप। की गयी गलती दुबारा न हो इसका नाम है प्रायश्चित। ईश्वरप्राप्ति के अभाव में मन में खटका हो कि 'प्रभु ! तू कब मिलेगा ?' इसका नाम है प्रार्थना।

जीवन एक साज है, उसे ठीक से बजाना जानो। जीवन एक संगीत है, उसे ठीक से आलापो। जीवन ईश्वर की तरफ से दिया गया एक तोहफा है, उसका सदुपयोग करो। जगत के मौज-मजे कम करो, अपनी आवश्यकताएँ कम करो। अपने में ही शांति पाओ। जप-ध्यान करो, प्राणायाम करो, आत्मशांति बढ़ाओ।

जो जानते हो उसका आदर करो। जो मिला है उसकी कद्र करो। जो परमात्मा मिला-मिलाया है, उसकी कद्र नहीं करते। जिस परमेश्वर के विषय में जानते हैं उसका आदर नहीं करते और व्यर्थ के चिंतन में बँध मरते हैं।

जैसे - तोते को पकड़नेवाले बाँबी लगा देते हैं, तोता उस पर बैठता है। बाँबी घूम जाती है तब भी वह उसे पकड़कर रखता है और समझता है कि किसीने उसे बाँध दिया है। नीचे लुढ़क जाता है फिर भी वह बाँबी छोड़ता नहीं है। ऐसे ही संसारी

चीजों के मिलने में भी कितने धक्के लगते हैं, फिर भी मन 'यह मिल जाय तो सुखी हो जाऊँ... वह मिल जाय तो सुखी हो जाऊँ...' इस प्रकार की वासना-आसक्ति छोड़ता नहीं।

तोते को अगर ज्ञान हो जाय कि 'मैं यहाँ फँसा नहीं हूँ, मैंने अज्ञानता से अपने को फँसा हुआ मान लिया है।' तो वह उसी समय मुक्त हो सकता है। ऐसे ही जीव ने अज्ञानता से शरीर को 'मैं' माना है, वास्तव में 'मैं' जहाँ से उठता है वह परमात्मा ही सत्य है। जिसने उस परमेश्वर के ज्ञान को पाया है, संसार को स्वप्न जाना है, ऐसा ज्ञानवान ही वास्तव में जीने का फल पा लेता है। उनके संग से ही अपना जीवन सार्थक होता है।

*

गीता प्रश्नोत्तरी

१६१. गीता के अनुसार दान कितने प्रकार के हैं ?
१६२. गीता के अनुसार आहार कितने प्रकार के हैं ?
१६३. 'ॐ तत् सत्' क्या है ?
१६४. सात्त्विक दान क्या है ?
१६५. गीता में कितने लोगों के नाम का उल्लेख हुआ है ?
१६६. महाभारत के युद्ध में भीष्म पितामह किनके पक्ष में थे ?
१६७. पाण्डवों के सेनापति कौन थे ?
१६८. कौरवों के सेनापति कौन थे ?
१६९. 'आप लोग निःसन्देह भीष्म पितामह की ही सब ओर से रक्षा करें।' यह बात किसने, किसको कही ?
१७०. धनंजय किसका नाम है ?

पिछले अंक के प्रश्नों के उत्तर

१५१. जो द्वन्द्व से परे हो १५२. जोड़े को, जैसे सुख-दुःख, दिन-रात आदि १५३. भगवान का अंश १५४. इन्द्रियों तथा मन को आधार बनाकर १५५. क्षर और अक्षर - दो १५६. तब अर्जुन स्वयं विषाद में हैं १५७. शास्त्र १५८. जो शास्त्र-विधि का उल्लंघन करता है १५९. तीन १६०. तीन।

आवश्यकता, पोषण और तृप्ति

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

प्राणिमात्र की आवश्यकतापूर्ति, पोषण और तृप्ति सहज में ही होती है। शरीर की आवश्यकता है अन्न, वस्त्र व आवास, किंतु आपकी आवश्यकता है तृप्ति, शांति और आनंद। सब शांति, आनंद और तृप्ति चाहते हैं। शरीर के लिए आवश्यक सारी चीजें मिल जायें, लेकिन तृप्ति नहीं मिलती तो वासनापूर्ति के लिए लोग डिस्को करने क्लबों में जाते हैं, शराब आदि पीते हैं, और भी न जाने क्या-क्या करते हैं। इससे तृप्ति की जगह अतृप्ति और शांति की जगह अशांति बढ़ती जाती है।

वासना व कामना अनित्य की होती है और आवश्यकता नित्य तत्त्व की। पोषण और तृप्ति इन दो चीजों की सभीको जरूरत है। शरीर का पोषण और मन की प्रसन्नता अर्थात् तृप्ति।

विधाता ने जो आवश्यकताएँ बनायी हैं उनकी पूर्ति के लिए चीजें सहज में ही प्राप्त हैं। अतः पोषण और तृप्ति सहज में ही हो जाती है। किंतु विलासिता और व्यर्थ चिंतन ने पोषण और तृप्ति को दबा दिया है। जैसे - बालक जन्म लेता है तो उसके पोषण के लिए माँ के शरीर में दूध स्वाभाविक ही बन जाता है अथवा समझो, उसकी माँ के शरीर में दूध न भी बने तो भी उसके पोषण की व्यवस्था हो जाती है। कोई पड़ोस की माँ उसे अपना दूध पिलाने को राजी हो जाती है। बच्चा पोषित भी होता है और अपने-आपमें तृप्त भी रहता है। वह अपनी निर्दोष खुशी को प्रकट भी करता रहता है।

क्या वह चलचित्र देखकर खुश है ? नहीं, अपने-आपमें ही खुश है।

अपनी इच्छित कोई चीज मिल जाय उस समय जो खुशी मिलती है वह तृप्ति नहीं है, वह तो वासनापूर्ति की खुशी है। वासना से व्यर्थ चिंतन और व्यर्थ चिंतन से व्यर्थ विलासिता बढ़ती है, जो जीव को भटका देती है। आवश्यकता की पूर्ति सहज में होती है किंतु वासना उसमें परेशानी पैदा करती है और हम वासना को ही आवश्यकता समझने लगते हैं।

वासना के वेग में बहकर हम अनुचित कर्म करते हैं। शास्त्र कहते हैं कि प्रदोषकाल में, संध्या के समय और देर रात्रि में कुछ नहीं खाना चाहिए। प्रदोषकाल में मैथुन नहीं करना चाहिए। मैथुन हेतु प्रदोषकाल (निषिद्धकाल) कौन-सा है ? संध्या का समय, एकादशी, अमावस्या, पूनम, अष्टमी, जन्मदिन, पर्व और त्यौहार। मासिक धर्म के प्रथम पाँच दिनों में तो मैथुन सर्वथा वर्जित है।

ऐसा नहीं कि आपको ज्ञान नहीं है; उचित-अनुचित का ज्ञान तो है लेकिन क्या करें, अनुचित कार्य करते समय एक तरफ तो लगता है कि यह करना ठीक नहीं है और दूसरी तरफ सुख के लालच में मनुष्य जानते हुए भी अनजान बन जाता है और अपने विवेक का अनादर कर देता है।

पानमसाला, सिगरेट, शराब आदि नुकसान करते हैं, संभोग से बल, बुद्धि, तेज, तंदुरुस्ती, आयु बढ़ानेवाला तत्त्व नष्ट होता है - यह समझते हैं फिर भी करते रहते हैं क्योंकि मन बहिर्मुख हो गया है और बुद्धि कमजोर हो गयी है। बुद्धि कमजोर हो जाती है तो मन हमें इन्द्रियों की तरफ खींचता है और फिर वासनापूर्ति में बुद्धि को भी अपने पीछे घसीट ले जाता है। **प्रज्ञाऽपराधो मूलं सर्वदोषाणाम्...** प्रज्ञा के अपराध के कारण ही दुःख बढ़ रहे हैं। वासनापूर्ति की चाह ही दुःखी करती है अन्यथा आवश्यकताएँ तो सहज में पूरी हो जाती हैं।

आप दीया जलाते हैं। उसकी आवश्यकता है ऑक्सीजन। क्या वह ऑक्सीजन के लिए चिल्लाता है या कहीं से एकत्रित करने जाता है ? नहीं, गरम हवाएँ ऊपर उठती हैं तो ठंडी हवाएँ उस खाली जगह को भर देती हैं। मस्तिष्क में खून कम पहुँचता है तो अपने-आप जम्हाई आ जाती है। आँखों को आवश्यकता है कि पलकें गिरें तो वे अपने-आप गिरती हैं।

सृष्टिकर्ता ने ऐसी सुंदर, सुखमय एवं मधुमय सृष्टि की है कि आपकी आवश्यकतापूर्ति और तृप्ति सहज में ही हो रही है। आवश्यकता है ज्ञान, ध्यान और सत्संग की तो वे सहज में मिल ही रहे हैं। कुसंग के लिए तो पैसे खर्चने पड़ते हैं।

एक तृप्ति होती है मनोगत, दूसरी भावगत और तीसरी बुद्धिगत। ये तीनों तृप्तियाँ तो बनती-बिगड़ती रहती हैं किंतु एक ऐसी परम तृप्ति है जिसको पाने के लिए अंदर से प्रेरणा मिलती है। इतना मिल गया, आखिर क्या ? इतना भोग लिया, फिर क्या ? अरे ! मुख्यमंत्री हो गये तो भी क्या ? प्रधानमंत्री हो गये तो भी क्या ? पूरा राज्य मिल जाय तो भी क्या ? अरे, भैया ! जो शरीर, मकान आदि मिला है वह भी एक दिन छोड़कर जाना है। हमारी आवश्यकता तो है परमानंद की प्राप्ति।

शरीर की आवश्यकता है अन्न-जल, वस्त्र और मकान। मन की आवश्यकता है प्रसन्नता किंतु आपकी आवश्यकता इतने से पूरी नहीं होती। आप हैं शाश्वत जीवात्मा। शाश्वत को जब तक शाश्वत सुख नहीं मिलेगा, तब तक मनुष्य सुख पाने के लिए कुछ-न-कुछ किये बिना नहीं रहेगा और शाश्वत सुख मिलता है शाश्वत स्वरूप को ठीक से समझकर उसमें स्थिति करने से, विश्रांति पाने से। ॐ आनंद... ॐ शांति...

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनी ऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें। (२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

गृहस्थाश्रम में सफलता

* संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से *

ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास - इन सब आश्रमों का आधार गृहस्थाश्रम ही है।

गृहस्थ-जीवन का मुख्य उद्देश्य है अपनी वासनाओं पर संयम रखना, एक-दूसरे की वासना को नियंत्रित कर त्याग और प्रेम उभारना तथा परस्पर जीवनसाथी बनकर एक-दूसरे के जीवन को उन्नत करना।

कामना-पूर्ति में फँसकर मनुष्य का जीवन निकम्मा न हो जाय, बल्कि कामना-पूर्ति की सीमा रहे इसलिए सनातन धर्म में शादी की व्यवस्था है। पति-पत्नी एक-दूसरे की रक्षा करें, एक-दूसरे के जीवन में निखार लाने की चेष्टा करें, एक-दूसरे की कमजोरी को दूर करने का यत्न करें। भारतीय संस्कृति में इसी व्यवस्था का नाम शादी है।

शास्त्र कहते हैं कि जब पति-पत्नी का नाता हो जाता है तो दोनों को एक-दूसरे की उन्नति का सोचना चाहिए। पति या पत्नी यदि तन, मन अथवा बुद्धि से कमजोर है तो एक-दूसरे का सहयोग करके एक-दूसरे की कमी को दूर करना चाहिए। एक-दूसरे की योग्यता उभारने का यत्न करना चाहिए।

ऐसा नहीं कि पति को टोकते रहें या पत्नी को डाँटते रहें। इससे कमियाँ निकलने की अपेक्षा बढ़ती चली जायेंगी। पति-पत्नी में से कोई यदि गलती करता है तो उस गलती को निकालने में कहीं गलतियों का भंडार न पैदा हो जाय इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

एक-दूसरे को बाहर से कुछ कहना भी पड़े तो कह दें किंतु दोनों का अंतःकरण सहानुभूति की भावना से भरा हो। ऐसा नहीं कि एक-दूसरे की कमियाँ ढूँढ़ते रहें और अपनी शेखी बघारते रहें। एक-दूसरे की कमियों के कारण टोकते रहते हैं और एक-दूसरे की कमियाँ खटकती रहती हैं तो तलाक देने तक की स्थिति आ जाती है।

मनुष्य का स्वभाव है कि जिसके प्रति उसकी द्वेषबुद्धि होती है उसके दोष ही दिखते हैं और जिसके प्रति रागबुद्धि होती है उसके गुण ही दिखते हैं। किसीके दोष निकालने में व्यक्ति दंड देने की अपेक्षा प्रेम से ज्यादा सफल होता है।

बाल गंगाधर तिलक ने अपनी अनपढ़ पत्नी को पढ़ा-लिखाकर काफी ऊँचा उठा दिया था। लोगों ने कहा कि ''आपने तो कमाल कर दिया!'' तिलक ने जवाब दिया कि ''कमाल की क्या बात है? अपने जीवनसाथी को ऊपर उठाना तो हमारा कर्तव्य है। एक पहिये से गाड़ी ठीक नहीं चलती, दूसरे पहिये को भी ठीक करना पड़ता है।''

पति-पत्नी, माता-पिता-पुत्र एक-दूसरे को दबोचने की कोशिश न करें। मैं तो यह कहूँगा कि शत्रु को भी दबोचने की कोशिश न करें, उससे सावधान रहें। उसको दबोचने की कोशिश से बड़ी हानि होती है। यदि आपके मन में शत्रु के प्रति भी हित की भावना है तो शत्रु का शत्रुपन टिक नहीं सकता।

श्रीरामजी अंगद से कहते हैं कि तुम रावण के पास जाओ और उसको समझाने की कोशिश करो। सीता को लाने का काम तो हमारा है किंतु हित रावण का होना चाहिए।

काजु हमार तासु हित होई।
रिपु सन करेहु बतकही सोई॥

(श्री रा.मानस, लं.कां. : १६.४)

पति जो कमाता है उस पर केवल पत्नी का ही हक नहीं है। परिवार के सभी सदस्यों की योग्यता बढ़ाने के लिए उसका उपयोग होना चाहिए

वरना अपना पेट तो पशु भी भर लेते हैं । अपने बच्चों की चोंच में तो पक्षी भी दाना रख देते हैं ।

कुछ लोग कहते हैं कि स्त्री केवल भोग्या है, उसको मुक्ति का अधिकार नहीं है। किंतु भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि वह स्त्री को भी मुक्ति की अधिकारिणी मानती है। सावित्री, मदालसा, गार्गी आदि ने परमात्मा का अनुभव किया और गार्गी ने तो जनक के दरबार में बैठे हुए पंडितों को भी अपनी आत्मनिष्ठा के प्रभाव से चकित कर दिया ! ऐसी अनेक महान नारियाँ भारतीय संस्कृति में ही हुई हैं ।

स्त्री पुरुष की अर्धांगिनी है । उसमें भी वही चेतना है जो पुरुष में है । गृहस्थ-जीवन स्त्री के बिना अधूरा है । परब्रह्म परमात्मा भी कहते हैं कि 'अकेले चौरस कैसे खेलें ? अकेले किससे बात करें ? दूसरा होगा तभी तो बात करेंगे !'

परब्रह्म परमात्मा की आह्लादिनी शक्ति में ही सृष्टि को उत्पन्न करने की शक्ति है । जैसे पुरुष की शक्ति उससे अलग नहीं, ऐसे ही परब्रह्म परमात्मा की आह्लादिनी शक्ति उससे अलग नहीं । जैसे पानी और उसकी तरंग अलग दिखते हुए भी एक-दूसरे से अलग नहीं, वैसे ही ईश्वर की व्यापक शक्ति माया, ईश्वर से अलग दिखते हुए भी उससे अलग नहीं ।

एक ही ईश्वरीय सत्ता के दो रूप हैं : एक रूप है त्याग और अनुशासन तो दूसरा है तप और प्रेम । जैसे : शिव-पार्वती, राम-सीता, कृष्ण-राधा ।

स्त्री-पुरुष के सांसारिक व्यवहार में पुरुष अपना तेज स्त्री को देता है । स्त्री उसे नौ महीने तक गर्भ में सँभालती है तथा अपने तप और प्रेम से बालक के रूप में बदलती है । अगर स्त्री में तप और प्रेम नहीं होता तो हम लोग यहाँ पर नहीं होते ।

सनातन धर्म कहता है कि जहाँ नारी का सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं ।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।

गृहस्थ-जीवन बुरा नहीं है, बुरी है अंधी आसक्ति, बुरा है अंधा आवेश, बुरा है अंधा चटोरापन । मनुष्य अपने चारों पुरुषार्थों को साधकर सच्चिदानंद के पूर्ण आनंद को पा सके - ऐसी व्यवस्था सनातन संस्कृति में है ।

जीवन केवल कमाने-खाने और मर जाने के लिए नहीं है । पशुओं की तरह जीने के लिए जीवन नहीं है । जीवन आनंद-उल्लास और आत्म-परमात्म सुख की अभिव्यक्ति के लिए है ।

हमें कोई कहता है कि 'यह मेरी मिसेस (पत्नी) है ।' तो हम कहते हैं : 'असंभव' । फिर उसकी पत्नी कहती है कि 'ये मेरे मिस्टर (पति) हैं ।' तो हम कहते हैं : 'असंभव' । यह सुनकर दोनों हक्के-बक्के रह जाते हैं ! फिर मैं धीरे-से कहता हूँ कि 'विदेशों में जो शादी होती है उसमें काम की प्रधानता होती है और अपने देश में धर्म की प्रधानता है । मिस्टर और मिसेस तो भोगी लोग कहते हैं, धर्मप्रधान जीवन जीनेवाले भारतवासी को यह शोभा नहीं देता । इसलिए यहाँ मिस्टर और मिसेस नहीं, धर्मपत्नी (अर्धांगिनी) और पतिदेव कहते हैं ।'

शुभ कर्म में अपनी ताकत होती है, बड़ा सामर्थ्य होता है । आप गृहस्थाश्रम में रहकर शुभ कर्म कर सकते हैं । शास्त्रानुकूल जीवन जीयें, संयम-नियम से रहें, परिवार का उचित पालन-पोषण करें, अपने बालकों में शुभ संस्कारों का सिंचन करें, माता-पिता, गुरु, अतिथि-अभ्यागत, साधु-संतों की सेवा करें, सत्संग-स्वाध्याय, जप-ध्यान, व्रत-उपवास आदि करें तो आप गृहस्थाश्रम में रहकर भी मुक्तिमार्ग के अधिकारी बन सकते हैं ।

यदि गृहस्थाश्रम को निभाने की कला आ जाय तो गृहस्थ-जीवन धन्य हो जाता है । इसीलिए शास्त्र कहते हैं - **धन्यो गृहस्थाश्रम !**

महत्त्वपूर्ण निवेदन

सदस्यों के डाक-पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा । जो सदस्य १४०वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया जून २००४ के अंत तक अपना नया पता भेज दें ।

रक्षा-कवच

※ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ※

जब आप सत्संग में होते हैं, शुद्ध वातावरण में होते हैं, तब लगता है कि कामविकार भोगने में वास्तव में कोई सार नहीं है। धन इकट्ठा कर-करके ज्यादा सँभालने की चिंता ही तो मिलती है, आखिर कुछ नहीं। अपनी संतान के लिए जो लोग छल-कपट करते हैं, आखिर में वही (संतान) उन पर थूकती है, यह भी लोगों का अनुभव है। जब आप बाहर जाते हो, बाहर के कामी-क्रोधी लोगों के आभामंडल में जाते हो तो आपकी पुरानी आदत के अनुसार आपको भी काम-क्रोध सताने लगते हैं।

बाहर जाने पर बाह्य हलकी तरंगों से हमारा पतन हो जाता है और हम पछताते हैं। हम पुनः सावधान होते हैं, किंतु फिर से झटका लग जाता है। अच्छे-अच्छे लोगों की यह हालत है। एक-दो की नहीं, लगभग सभीकी यह हालत है।

यदि हम सावधान नहीं रहें, आप पैर छुएँ और हम छुआते रहें, आप देते और हम लेते रहें तो हमारी भी ऐसी दुर्दशा हो जायेगी कि हम आपको मुँह दिखाने के काबिल न रहेंगे। एक बार ऐसा हुआ था। जब हम अमेरिका गये थे तब मेरे मन में हुआ कि 'ये जो डॉलर आते हैं आरती में, दक्षिणा में, वे हमको अपने पास रखने चाहिए; आयोजन-समिति के हवाले नहीं करने चाहिए। काम में आयेंगे।'

थोड़ी ही देर में भगवान की कृपा हुई, गुरुदेव का सहयोग रहा... तुरंत मैंने अपने भक्त से कहा कि 'मुझे वापस भारत जाना है, टिकट करवा लो।'

''बापूजी ! कार्यक्रमों का क्या होगा ?''

''जितने हो गये बहुत हैं। जो दो-चार दिये हैं उन्हें पूरा करके भारत जाना है। जल्दी से टिकट करवाओ।''

''क्या हमसे कोई गलती हो गयी है ?''

''नहीं, नहीं। आप लोगों से कोई गलती नहीं हुई है।''

किंतु आप लोगों के एयर कंडीशन्ड वातावरण में रहकर और आप लोगों के श्वासोच्छ्वास में रहकर हमारा मन कहता है कि 'हमें डॉलर रखने चाहिए।'

उनको यह लम्बी बात नहीं कही, किंतु मैंने टिकट बनवा ली और फिसलते-फिसलते बच गया। भगवान साक्षी है, उसके बाद मैं अमेरिका कभी नहीं गया। बहुत आमंत्रण आये, बहुत बार वहाँ के लोगों ने बुलाया लेकिन मैं नहीं गया।''

भगवान रामजी के गुरुदेव कहते हैं कि 'हे रामजी ! वासना के आवेग में बहने की दीर्घकाल की आदत दीर्घकालीन शुभ अभ्यास के बिना नहीं मिटती।'

जब रामजी के जमाने में भी लोग फिसलते थे और दीर्घकालीन अभ्यास की आवश्यकता थी तो अभी तो कलियुग है। अभी तो ज्यादा सावधानी की जरूरत है। इस सावधानी के लिए मुझे शास्त्रों में से एक रक्षा-कवच मिल गया है जो मुझे अच्छा लगा। मैंने उसका प्रयोग किया। बड़ा सरल है।

आरंभ में आप यह प्रयोग थोड़े दिन लगातार करें। फिर तो आप याद करेंगे और रक्षा-कवच आपके इर्दगिर्द बन जायेगा। एक प्रकार की आध्यात्मिक परतें बन जायेंगी। फिर वासना की तरंगें आपके अंदर नहीं घुसेंगी।

आँख ने कुछ देखा, मन उसके लिए लालायित हुआ, बुद्धि ने निर्णय लिया कि ऐसा करना है। इस प्रकार एक-एक इन्द्रिय मन को खींच लेती है। मन बुद्धि से सम्मति ले लेता है और आप उसमें गरक हो जाते हैं।

वासना के इन आवेगों से स्वयं को बचाने में

यदि आप सहयोग नहीं देते तो भगवान और गुरु भी आपको बचाने में सफल नहीं हो सकते । यदि विद्यार्थी साथ नहीं देता है तो शिक्षक और प्राचार्य मिलकर भी विद्यार्थी को पदवीधारी नहीं बना सकते । अतः पुरुषार्थ तो आपको ही करना पड़ेगा ।

भगवान की, शास्त्रों की, ऋषियों एवं सद्गुरु की कृपा अनावृत है, जैसे सूर्य की किरणें, बरसात सामान्यतः मिलते ही हैं । किंतु किसान स्वयं मेहनत नहीं करे तो बरसात और सूर्य क्या करेंगे ?

आप अपनी रक्षा कीजिये ।

रक्षा-कवच धारण करने एवं आत्मबल जगाने की विधि

पद्मासन या सिद्धासन में बैठें । मेरुदंड सीधा हो । आँखें आधी खुलीं - आधी बंद रखें । गहरा श्वास लें और उसे भीतर रोककर रखें । 'ॐ' या अपने इष्टमंत्र अथवा गुरुमंत्र का जप करते हुए दृढ भावना करें कि 'मेरे इष्ट की कृपा का शक्तिशाली प्रवाह मेरे अंदर प्रवेश कर रहा है और मेरे चारों ओर सुदर्शन चक्र-सा एक इन्द्रधनुषी घेरा बनाकर घूम रहा है । वह अपने दिव्य तेज से मेरी रक्षा कर रहा है । इन्द्रधनुषी प्रकाश घना होता जा रहा है । दुर्भावनारूपी अंधकार विलीन हो गया है । सात्त्विक प्रकाश-ही-प्रकाश छाया है । सूक्ष्म आसुरी शक्तियों से मेरी रक्षा करने के लिए वह रश्मिल चक्र सक्रिय है । मैं पूर्णतः निश्चिंत हूँ ।'

श्वास जितनी देर भीतर रोक सकें, रोकें । मन-ही-मन उक्त भावना को दोहरायें । मानसिक चित्र बना लें । अब धीरे-धीरे 'ॐ...' का दीर्घ उच्चारण करते हुए श्वास बाहर निकालें और भावना करें कि 'मेरे सारे दोष, विकार भी बाहर निकल गये हैं । मन-बुद्धि शुद्ध हो गये हैं । श्वास के खाली होने के बाद तुरंत श्वास न लें । यथाशक्ति बिना श्वास रहें और भीतर-ही-भीतर 'हरि ॐ... हरि ॐ...' का मानसिक जप करें । दस-पंद्रह मिनट ऐसे प्राणायामसहित उच्च स्वर से 'ॐ...' की ध्वनि करके शांत हो जायें । सब प्रयास छोड़ दें । वृत्तियों को आकाश की ओर फैलने दें । आकाश के अंदर पृथ्वी है । पृथ्वी पर अनेक देश, अनेक समुद्र एवं अनेक लोग हैं । उनमें से एक आपका शरीर आसन पर बैठा हुआ है । इस पूरे दृश्य को आप मानसिक आँख से, भावना से देखते रहें । आप शरीर नहीं हो बल्कि अनेक शरीर, देश, सागर, पृथ्वी, ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र एवं पूरे ब्रह्मांड के द्रष्टा हो, साक्षी हो । इस साक्षीभाव में जाग जायें ।

थोड़ी देर के बाद फिर से प्राणायामसहित 'ॐ...' का जाप करें और शांत होकर अपने विचारों को देखते रहें ।

इस अवस्था में दृढ़ निश्चय करें कि 'मैं जैसा बनना चाहता हूँ वैसा होकर ही रहूँगा ।' विषयसुख, सत्ता, धन-दौलत इत्यादि की इच्छा न करें क्योंकि आत्मबलरूपी हाथी के पदचिह्न में अन्य सभीके पदचिह्न समाविष्ट हो ही जायेंगे । आत्मानंदरूपी सूर्य के उदय होने पर मिट्टी के तेल के दीये के प्रकाशरूपी क्षुद्र सुखाभास की गुलामी कौन करे ?

किसी भी भावना को साकार करने के लिए हृदय को कुरेद डाले ऐसी निश्चयात्मक बलिष्ठ वृत्ति होनी आवश्यक है । अंतःकरण के गहरे-से-गहरे प्रदेश में चोट करे ऐसा श्वास भरके निश्चयबल का आवाहन करें । सीना तानकर खड़े हो जायें अपने मन की दीन-हीन, दुःखद मान्यताओं को कुचल डालने के लिए ।

सदा स्मरण रहे कि इधर-उधर भटकती वृत्तियों के साथ आपकी शक्ति भी बिखरती रहती है । अतः तमाम वृत्तियों को एकत्रित करके साधनाकाल में आत्मचिंतन में लगायें और व्यवहारकाल में जो कार्य करते हों उसमें लगायें । हरेक कार्य आवेशरहित व दत्तचित्त होकर करें । सदैव विचारशील एवं प्रसन्न रहें । जीवमात्र को अपना स्वरूप समझें । सबसे स्नेह करें । दिल को व्यापक रखें । खंडनात्मक वृत्ति का सर्वथा त्याग करें ।

आत्मनिष्ठा में जगे हुए महापुरुषों के सत्संग तथा सत्साहित्य से अपने जीवन को

आत्मविश्वास, श्रद्धा-भक्ति, प्रेम व वेदांत से पुष्ट एवं पुलकित करें । कुछ ही दिनों के इस सघन प्रयोग के बाद आपको अनुभव होने लगेगा कि 'भूतकाल के नकारात्मक स्वभाव, संशयात्मक-हानिकारक कल्पनाओं ने जीवन को कुचल डाला था, विषैला कर दिया था । अब निश्चयबल के चमत्कार का पता चला । अंतरतम में आविर्भूत दिव्य खजाना अब मिला । प्रारब्ध की बेड़ियाँ अब टूटने लगीं ।'

प्रातः और सायं के संध्या-पूजन से पहले या बाद में इसका रोज अभ्यास करें । इसके नियमित अभ्यास से आत्मबल दृढ़ एवं रक्षा-कवच घनीभूत होकर ये दोनों सिद्ध हो जाते हैं । बाद में तो आपके द्वारा स्मरण-आवाहन मात्र से ही इनकी तेजस्विता मुखरित हो जायेगी । दुष्प्रभावों के अदृश्य परमाणुओं के भंजन के लिए ये अचूक साथी हैं । जैसे लोहे को लोहा काटता है, वैसे ही विचार को विचार काटता है । आपके इन दो साथियों - आत्मबल एवं रक्षा-कवच के सामर्थ्य पर विश्वास कीजिये । ये सतत आपकी रक्षा एवं पुष्टि करेंगे ।

जिसको गुरुमंत्र मिला है और ठीक से उसका जप किया है, वह कितने भी भयानक श्मशान से गुजर जाय, कितने भी भूत-प्रेतों के बीच चला जाय तो भूत-प्रेत उस पर हमला नहीं कर सकते, उसे डरा नहीं सकते ।

प्रायः उन निगुरे लोगों को भूत-प्रेत, डाकिनी-शाकिनी इत्यादि सताते हैं जो लोग अशुद्ध पदार्थ खाते हैं, प्रदोषकाल में भोजन करते हैं, प्रदोषकाल में मैथुन करते हैं । जिनका कोई इष्टदेव नहीं, इष्टमंत्र नहीं, गुरुमंत्र नहीं, उनके ऊपर ही भूत-प्रेत का प्रभाव पड़ता है । जो सद्गुरु के शिष्य होते हैं, जिनके पास गुरुमंत्र होता है, भूत-प्रेत उनका कुछ नहीं कर सकते । - आश्रम की पुस्तक 'कल्याणनिधि' से ।

कलियुग : दोष अनेक, उपाय एक

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

भगवान वेदव्यासजी बड़ी ऊँची मति के धनी थे । आज से करीब ५२०० वर्ष पूर्व उन्होंने 'श्रीमद्भागवत' में कलियुग के बारे में जो लिखा था, वैसा ही होता चला आ रहा है ।

कौन-सा राजा पृथ्वी पर कितने वर्षों तक राज्य करेगा ? - इसका वर्णन भी भागवत के १२वें स्कंध के प्रथम अध्याय में आता है । एक समय ऐसा भी आयेगा जब नंद (महापद्म) पृथ्वी का एकमात्र शासक होगा । परंतु बाद में चाणक्य, कौटिल्य तथा वात्स्यायन नामों से प्रसिद्ध एक ब्राह्मण, नंद तथा उसके पुत्रों का नाश कर चंद्रगुप्त मौर्य को राजा के पद पर अभिषिक्त करेगा । इस इतिहास को भी हम सब जानते हैं ।

कलियुग में एक समय ऐसा भी आयेगा जब बिना दाढ़ी-मूँछ के राजा राज्य करेंगे, यह बात भी शास्त्रों में आती है । आप जानते ही हैं कि नेहरूजी और शास्त्रीजी दाढ़ी-मूँछें नहीं रखते थे और इंदिरा तो लाती कहाँ से ? मोरारजी और राजीव का भी पूरा चेहरा साफ था ।

'श्रीमद्भागवत' में आता है :

कलियुग में जिसके पास धन होगा, उसीको लोग कुलीन, सदाचारी और सद्गुणी मानेंगे । विवाह-सम्बंध के लिए कुल-शील-योग्यता आदि की परख-निरख नहीं होगी बल्कि युवक-युवती की पारस्परिक रुचि से ही सम्बंध हो जाया करेंगे । व्यवहार की निपुणता सच्चाई और ईमानदारी में

नहीं मानी जायेगी बल्कि जो जितना छल-कपट कर सकेगा, वह उतना ही व्यवहारकुशल माना जायेगा।

जो घूस देने या धन खर्च करने में असमर्थ होगा, उसे अदालतों से ठीक-ठीक न्याय न मिल सकेगा। जो बोलचाल में जितना चालाक होगा, उसे उतना ही बड़ा पंडित माना जायेगा। गरीब होना ही असाधु अथवा दोषी होना माना जायेगा। धर्म का पालन यश के लिए किया जायेगा।

ब्राह्मण की पहचान उसके गुण-स्वभाव से नहीं वरन् यज्ञोपवीत से हुआ करेगी और ब्रह्मचारी, संन्यासी आदि आश्रमियों की पहचान वस्त्र, दंड, कमंडलु आदि से ही होगी। एक-दूसरे का चिह्न स्वीकार कर लेना ही एक से दूसरे आश्रम में प्रवेश का स्वरूप होगा।

कभी तो वर्षा नहीं होगी और सूखा पड़ेगा तो कभी बाढ़ आयेगी, कभी कड़ाके की सर्दी पड़ेगी तो कभी गर्मी पड़ेगी। लोग भूख-प्यास तथा नाना प्रकार की चिंताओं से दुःखी रहेंगे। रोगों से तो उन्हें छुटकारा ही न मिलेगा। यह बात आप-हम देख ही रहे हैं।

'श्रीमद्भागवत' में आगे आता है : भगवान का ऐश्वर्य अनंत है और वे एकरस अपने स्वरूप में स्थित हैं। किंतु कलियुग में लोगों में इतनी मूढ़ता फैल जायेगी, पाखंडियों के कारण लोगों का चित्त इतना भटक जायेगा कि प्रायः लोग अपने कर्म और भावनाओं के द्वारा भगवान की पूजा से भी विमुख हो जायेंगे।

कलिकाल के इन दोषों से बचने का उपाय क्या है ?

'श्रीमद्भागवत' में इन सभी दोषों का एक ही सचोट और सुंदर उपाय बताते हुए वेदव्यासजी कहते हैं :

'यदि मनुष्य मृत्यु के समय की व्याकुलता की स्थिति में अथवा गिरते या फिसलते समय विवश होकर भी भगवान के किसी एक नाम का उच्चारण कर ले तो उसके सारे कर्मबंधन छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और उसे उत्तम गति प्राप्त होती है। परंतु कलियुग से प्रभावित होकर लोग उन भगवान की आराधना से ही विमुख हो जाते हैं।'

'श्रीमद्भागवत' के १२वें स्कंध के तीसरे अध्याय के अंत में आता है :

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत्॥
कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

'यों तो कलियुग दोषों का खजाना है परंतु इसमें एक बहुत बड़ा गुण भी है। वह गुण यही है कि कलियुग में केवल भगवान का संकीर्तन करनेमात्र से ही सारी आसक्तियाँ छूट जाती हैं और परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। सत्ययुग में भगवान के ध्यान से, त्रेता में बड़े-बड़े यज्ञों द्वारा उनकी आराधना से और द्वापर में विधिपूर्वक उनकी सेवा-पूजा से जो फल मिलता है, वह कलियुग में केवल भगवन्नाम-कीर्तन करने से ही प्राप्त हो जाता है।'

श्रीकृष्ण बोले : "कलियुग आयेगा और उसमें ऐसे लोगों का राज्य होगा कि जो दोनों ओर से प्रजा का शोषण करेंगे। बोलेंगे कुछ और करेंगे कुछ। ऐसे लोगों का राज्य होगा। कलियुग में ऐसे लोग रहेंगे जो बड़े-बड़े कहलायेंगे। बड़े पंडित और विद्वान कहलायेंगे किंतु वे यही देखते रहेंगे कि कौन-सा मनुष्य मरे और हमारे नाम से संपत्ति कर जाय। संस्था के व्यक्ति विचारेंगे कि कौन-सा मनुष्य मरे और संस्था हमारे नाम से हो जाय। पंडित विचार करेंगे कि कब किसका श्राद्ध है ? चाहे जितने भी बड़े लोग होंगे किंतु उनकी दृष्टि तो मांस के ऊपर (धन के ऊपर) ही रहेगी। कलियुग में आदमी के पास धन और सत्ता की व्यवस्था होगी फिर भी उसका पतन धन या सत्ता से रुकेगा नहीं। उसका मन नीचे के केन्द्रों में गिरता रहेगा। धन के ढेर उसे थाम नहीं सकेंगे, सत्ता का प्रभाव उसे थाम नहीं सकेगा लेकिन रामनाम का छोटा-सा तिनका भी गिरते हुए मन को थाम लेगा। जीवन उन्नत होने लगेगा। संत-समागम से जीवन का पतन होना रुक जायेगा।" -आश्रम की पुस्तक 'कल्याणनिधि' से।

मनुष्य-मनुष्य में भिन्नता क्यों ?

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

प्रकृति के तीन गुण हैं : सत्त्व, रज और तम। इन तीनों गुणों की भिन्नता के कारण ही मानव-मानव का स्वभाव, प्रकृति भिन्न होती है।

मनुष्य-जन्म कब मिलता है ? पुण्य-पाप बराबर होते हैं तो मनुष्य-जन्म मिलता है। पाप अधिक होते हैं तो हलकी योनि मिलती है, पुण्य अधिक होते हैं तो उच्च योनि मिलती है - ऐसा शास्त्रकारों व संतों का कहना है।

यदि पाप-पुण्य की बराबरी होने पर मनुष्य-जन्म मिलता है तो मनुष्य-मनुष्य में भिन्नता क्यों होती है ? इसका कारण सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों की भिन्नता है। जैसे कपड़ा 'पॉपलीन', 'टेरीकॉटन' आदि कई प्रकार का होता है और उनमें भी कई उपप्रकार होते हैं, वैसे ही मनुष्यों में भी भिन्नताएँ होती हैं।

मनुष्य-जन्म न तो अधिक पुण्यवाला है और न ही अधिक पापवाला, बल्कि इन दोनों का मिश्रण है। मिश्रण में भी सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण के अपने-अपने प्रमाण होते हैं। समझो, सत्त्वगुण १०%, रजोगुण ८०% और तमोगुण १०% है तो व्यक्ति रजोगुणी होगा। समझो, रजोगुण ५०%, तमोगुण ४०% और सत्त्वगुण १०% है तो ऐसा व्यक्ति रजो-तमोगुणप्रधान होगा। अगर ८०-९०% सत्त्वगुण है तो व्यक्ति सत्त्वगुणप्रधान होगा। सत्त्वगुण ५०% है तो रजो-तमोगुण का भी अपना प्रभाव रहेगा। इस प्रकार तीन गुणों की अधिकता-न्यूनता के अनुसार ही मनुष्य की प्रकृति होती है। ये तीन गुण खानपान, संग और विचारों के अनुसार बदलते रहते हैं, न्यूनाधिक होते रहते हैं।

जीव जब मनुष्य-देह में होता है तब सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण सम नहीं होते। कोई नीच योनि से आया है, कोई उच्च योनि से आया है, कोई किसी शरीर से आया है तो कोई किसी शरीर से। कितने-कितने लोग सत्संग में आते हैं और ज्ञान की बातें, भगवान की कथाएँ सुनते हैं। सब पुण्यात्मा तो हैं, सब लोग एक जैसा सुनते हैं और सब मनुष्य भी हैं, फिर भी सबकी अपनी-अपनी क्षमता है। ...तो प्रत्येक व्यक्ति सुने हुए सत्संग का अपना-अपना अर्थ लगायेगा। जैसे महाविद्यालय वही-का-वही, प्राध्यापक वही-का-वही, फिर भी अलग-अलग विद्यार्थी अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार ही शिक्षा ग्रहण करते हैं, वैसे ही मनुष्य भी सत्संग के अर्थ को अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार ही ग्रहण करते हैं।

गुणों की परस्पर भिन्नता से मनुष्यों की अलग-अलग योग्यता होती है। ऐसे ही कर्मों की न्यूनता-अधिकता होने के कारण किसीको कम तो किसीको ज्यादा सुख मिलता है, किसीकी समझ ऊँची होती है और वह धार्मिक होता है तो किसीकी समझ हलकी होती है और वह संसारी होता है।

समझ, धार्मिकता, सुख या कर्म पर संग का बड़ा प्रभाव पड़ता है। बचपन में यदि किसी आपराधिक वृत्तिवाले का संग मिल जाय तो व्यक्ति उसी तरफ मुड़ जाता है और यदि किसी संत-महापुरुष का संग मिल जाय तो व्यक्ति महानता की ओर मुड़ जाता है। यदि किसीको बचपन में बुरा संग मिल गया लेकिन उसके पूर्व के अच्छे संस्कार जोरदार हैं, तीव्र हैं और बुरे संस्कार डालनेवालों का प्रभाव अधिक नहीं है तो वह श्रेष्ठ संग पाकर अच्छा बन सकता है। इसके विपरीत यदि उसके बुरे संस्कार तीव्र हैं तो बुरा संग मिलने पर अच्छा व्यक्ति भी बुरा बन जायेगा, उसके अच्छे संस्कार दब जायेंगे।

हम सब साधारण लोगों की बुद्धि तो अलग-

अलग होती ही है लेकिन जो बड़े-बड़े महात्मा हो गये उनका अनुभव एक होते हुए भी उनके मत, रीति-रिवाज और साधन-भजन की पद्धति थोड़ी भिन्न है। जैसे - नानकजी आये तो सिख पंथ चल पड़ा, कबीरजी आये तो कबीर पंथ चल पड़ा... **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म... एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति।** ब्रह्म सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, अनंतस्वरूप है। वह एक है और अद्वितीय है। बाकी सबका स्वभाव, सबकी प्रकृति, सबकी योग्यता, सबकी मति, सबका शरीर एक जैसा नहीं होता। मत होते हैं मति के और मतियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं।

गुणों की न्यूनाधिक मात्रा के अनुसार मनुष्य की प्रकृति बनती है। तमोगुणियों के लक्षण हैं - आलस्य, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, निंदा, वैर, कलह आदि। रजोगुणियों के लक्षण हैं - प्रवृत्ति, किसीमें दोष न देखना, भोग व यश बढ़ाना और ऐहिक जगत में सुख ढूँढना। सत्त्वगुणियों के लक्षण हैं - ईश्वर में प्रीति करना और जिज्ञासा करना कि 'मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? आखिर क्या होगा ? इस संसार के मायाजाल से कैसे मुक्त होऊँगा ?' उनमें शांति होती है, सहनशक्ति होती है, परोपकारिता, क्षमा व उदारता होती है। वे मान-मत्सर, वैर-कलह आदि से दूर रहते हैं।

सात्त्विक मनुष्य ज्ञान में जल्दी प्रविष्ट होता है। सत्त्वगुण होने से ज्ञान जल्दी प्रकट होता है। रजो-तमोगुणी को परमात्म-ज्ञान पाने के लिए बहुत परिश्रम करना पड़ता है।

राजसी व्यक्ति परिश्रम करके भोग-भोगकर थोड़ा सुख पा लेता है। तामसी व्यक्ति गलत कर्म करके पाप की गठरी बढ़ाते-बढ़ाते जरा-से सुख का एहसास करता है लेकिन अंदर से दुःखी-का-दुःखी रहता है, भयभीत रहता है। सात्त्विक व्यक्ति सत्कर्मों के द्वारा, जप-ध्यान, साधन-भजन के द्वारा सात्त्विक सुख पाता है और भीतर से भी शांत व प्रसन्न रहता है।

सत्त्व, रज और तम - ये तीनों गुण माया के हैं, प्रकृति के हैं लेकिन यह जो सत्त्वगुण है, वह माया से पार ले जाने में सहायक है।

सिद्धपुरुष बनने के सात उपाय...

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

श्री रामानुजाचार्य ने कुछ उपाय बताये हैं, जिनका आश्रय लेने से साधक सिद्ध बन सकता है। वे उपाय हैं :

(१) विवेक : आत्मा अविनाशी है, जगत विनाशी है। देह हाड़-मांस का पिंजर है, आत्मा अमर है। शरीर के साथ आत्मा का कतई सम्बंध नहीं है और वह आत्मा ही परमात्मा है। इस प्रकार का तीव्र विवेक रखें।

(२) विमुखता : जिन वस्तुओं, व्यसनों को ईश्वरप्राप्ति के लिए त्याग दिया, फिर उनकी ओर न देखें, उनसे विमुख हो जायें। घर का त्याग कर दिया तो फिर उस ओर मुड-मुडकर न देखें। व्यसन छोड़ दिये तो फिर दुबारा न करें। जैसे कोई वमन करता है तो फिर उसे चाटने नहीं जाता, ऐसे ही ईश्वरप्राप्ति में विघ्न डालनेवाले जो कर्म हैं उन्हें एक बार छोड़ दिया तो फिर दुबारा न करें।

(३) अभ्यास : भगवान के नाम-जप का, भगवान के ध्यान का, सत्संग में जो ज्ञान सुना है उसका नित्य, निरंतर अभ्यास करें।

(४) कल्याण (निष्काम सेवा) : जो अपना कल्याण चाहता है वह औरों का कल्याण करे, निष्काम भाव से औरों की सेवा करे।

(५) भगवत्प्राप्तिजन्य क्रिया : तन से जो कार्य करें उनमें भगवत्प्राप्ति का भाव हो, मन से जो विचार करें उनमें भी भगवत्प्राप्ति का भाव हो और बुद्धि से जो निश्चय करें उन्हें भी भगवत्प्राप्ति के लिए करें।

(६) अनवसाद : कोई भी दुःखद घटना घट जाय तो उसे बार-बार याद करके दुःखी न हों।

(७) अनुहर्षात् : किसी भी सुखद घटना में हर्ष से फूलें नहीं। जो साधक इन सात उपायों को अपनाता है, वह परम सिद्धि रूप परमात्मा में स्थिति प्राप्त कर लेता है। अष्टसिद्धि-नवनिधि से भी ऊँची ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर लेता है।

ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर, कार्य रहे ना शेष।
मोह कभी न ठग सके, इच्छा नहीं लवलेश ॥

सर्वतीर्थमयी माता...

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

न्यायाधीश गुरुदास सिंह उच्च न्यायालय में वादी-प्रतिवादी को सुन रहे थे । इतने में एक वृद्धा जीर्ण-शीर्ण वस्त्र पहने न्यायालय के द्वार पर पहुँची । गंगा-स्नान करके आयी उस वृद्धा के वस्त्र गीले थे ।

न्यायालय के द्वार पर उसे चपरासी ने रोक दिया । वृद्धा ने कहा : ''न्यायाधीश गुरुदास कहाँ मिलेंगे ? तुम मुझे गुरुदासजी के दर्शन कराओ, नहीं तो मैं यहीं प्राण छोड़ दूँगी ।''

चपरासी ने देखा कि वृद्धा की भावना बड़ी तीव्र है और बोलती भी बड़े प्यार से है । उसने न्यायाधीश गुरुदासजी से कहा :

''साहब ! एक गरीब वृद्धा, जिसके कपड़ों का ठिकाना नहीं है, शरीर पर झुर्रियाँ पड़ी हुई हैं, आपका नाम ले रही है कि मुझे गुरुदासजी से मिलाओ ।''

गुरुदासजी विचारने लगे कि कौन होगी ? द्वार पर जाकर देखा तो 'ओहोऽऽऽ... मैं जब शिशु था तब यह वृद्धा मुझे दूध ठंडा करके पिलाया करती थी । यह हमारे घर में सेवा करने आती थी ।'

न्यायाधीश ने उसे प्रणाम किया और बड़े आदर से न्यायालय में ले आये । वृद्धा क्या जाने कि न्यायाधीश का पद कितना ऊँचा होता है ?

वृद्धा ने कहा : ''बेटा गुरुदास ! मैं तो चली थी गाँव से । तेरी बहुत याद आती थी तो गंगा नहाकर तुझे देखने आ गयी हूँ, मेरे लाल !''

गुरुदास सिंह की आँखों में पानी आ गया । उन्होंने उस वृद्धा को आदर से बिठाया और उपस्थित लोगों से कहा : ''जो मुझे बचपन में गाय का दूध ठंडा करके पिलाती थीं, मेरी वह माँ आयी हैं ।''

गुरुदासजी जब धाय माँ अथवा सेविका का इतना उपकार मानते थे तो अपनी माँ स्वर्णमणि देवी का कितना उपकार मानते होंगे !

विद्यार्थी चाहे कितना भी बड़ा न्यायाधीश, वकील, नेता, उद्योगपति या संत हो जाय किंतु माँ के आगे तो वह बेटा ही है ।

सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता ।
मातरं पितरं तस्मात् सर्वयत्नेन पूजयेत् ॥

(पद्म पुराण, सृष्टि खंड : ४७.१३)

माता का आदर भूमंडल के समस्त तीर्थों की परिक्रमा का फल देता है । जिसने माता का आदर किया समझो, उसने पृथ्वी के सभी तीर्थों का आदर कर लिया । जिसने पिता का आदर किया समझो, उसने ब्रह्मलोक तक के सभी लोकों का आदर कर लिया ।

नमस्कार : दिव्य जीवन का प्रवेशद्वार

हे विद्यार्थी ! नमस्कार भारतीय संस्कृति का अनमोल रत्न है । नमस्कार अर्थात् नमन, वंदन या प्रणाम । भारतीय संस्कृति में नमस्कार का अपना एक अलग ही स्थान और महत्त्व है । जिस प्रकार पश्चिम की संस्कृति में 'शेकहैन्ड' (हाथ मिलाना) किया जाता है, वैसे भारतीय संस्कृति में दो हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर प्रणाम करने का प्राचीन रिवाज है । नमस्कार के अलग-अलग भाव और अर्थ हैं ।

नमस्कार एक श्रेष्ठ संस्कार है । जब तुम किसी बुजुर्ग, माता-पिता, संत-ज्ञानी-महापुरुष के समक्ष हाथ जोड़कर मस्तक झुकाते हो, तब तुम्हारा अहंकार पिघलता है और अंतःकरण निर्मल होता है । तुम्हारा आडंबर मिट जाता है और तुम सरल व सात्त्विक हो जाते हो । साथ-ही-साथ नमस्कार द्वारा 'योग-मुद्रा' भी हो जाती है ।

- आश्रम की पुस्तक 'बाल संस्कार' से ।

एकादशी माहात्म्य

[शयनी एकादशी : २९ जून]

युधिष्ठिर ने पूछा : भगवन् ! आषाढ़ के शुक्लपक्ष में कौन-सी एकादशी आती है ? उसका नाम और विधि क्या है ? यह बतलाने की कृपा करें।

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! आषाढ़ के शुक्लपक्ष की एकादशी का नाम 'शयनी' है। वह महान पुण्यमयी, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाली, सब पापों को हरनेवाली तथा उत्तम व्रत है। 'शयनी एकादशी' के दिन जिन्होंने कमल-पुष्प से कमललोचन भगवान विष्णु का पूजन तथा एकादशी का उत्तम व्रत किया है, उन्होंने तीनों लोकों और तीनों सनातन देवताओं का पूजन कर लिया।

'हरिशयनी एकादशी' के दिन मेरा एक स्वरूप राजा बलि के यहाँ रहता है और दूसरा क्षीरसागर में शेषनाग की शय्या पर तब तक शयन करता है, जब तक आगामी कार्तिक की एकादशी नहीं आ जाती। अतः आषाढ़ शुक्लपक्ष की एकादशी से लेकर कार्तिक शुक्ल एकादशी तक मनुष्य को भलीभाँति धर्म का आचरण करना चाहिए। जो मनुष्य इस व्रत का अनुष्ठान करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है। इस कारण यत्नपूर्वक इस एकादशी का व्रत करना चाहिए। एकादशी की रात में जागरण करके शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान विष्णु की भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए। ऐसा करनेवाले पुरुष के पुण्य की गणना करने में चतुर्मुख ब्रह्माजी भी असमर्थ हैं। राजन् ! जो इस प्रकार भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले सर्वपापहारी एकादशी के उत्तम व्रत का पालन करता है, वह जाति से चाण्डाल होने पर भी संसार में सदा मेरा प्रिय करनेवाला है। जो मनुष्य दीपदान, पलाश के पत्ते पर भोजन और व्रत करते हुए चौमासा व्यतीत करते हैं, वे मेरे प्रिय हैं। चौमासे में भगवान विष्णु योगनिद्रा - समाधि में शयन करते हैं, इसलिए मनुष्य को भूमि पर शयन करना चाहिए। सावन में साग, भादों में दही, क्वाँर में दूध और कार्तिक में दाल का त्याग कर देना चाहिए। जो चौमासे में ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है। राजन् ! एकादशी के व्रत से ही मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है, अतः सदा इसका व्रत करना चाहिए। कभी भूलना नहीं चाहिए। **'शयनी' और 'बोधिनी' के बीच में जो कृष्णपक्ष की एकादशियाँ होती हैं, गृहस्थ के लिए वे व्रत रखने योग्य हैं - अन्य मासों की कृष्णपक्षीय एकादशियाँ गृहस्थ के रखने योग्य नहीं होतीं। उन्हें शुक्लपक्ष की सभी एकादशियाँ करनी चाहिए। ('पद्म पुराण' से)**

यः पुनः पठते रात्रौ गातां नामसहस्रकम्।
द्वादश्यां पुरतो विष्णोर्वैष्णवानां समापतः।
स गच्छेत्परम स्थान यत्र नारायणः त्वयम्॥

'जो एकादशी की रात में भगवान विष्णु के आगे वैष्णव भक्तों के समीप गीता और विष्णुसहस्रनाम का पाठ करता है, वह उस परम धाम में जाता है, जहाँ साक्षात् भगवान नारायण विराजमान हैं।'

(स्कं. पु. द्वा. मा. : १८.४३-४४)

जो मानव द्वादशी तिथि को भगवान विष्णु के आगे जागरण करते हैं, वे यमराज के पाश से मुक्त हो जाते हैं। जो द्वादशी को जागरण करते समय गीता-शास्त्र से मनोविनोद करते हैं, वे भी यमराज के बंधन से मुक्त हो जाते हैं। जो प्राणत्याग हो जाने पर भी द्वादशी का जागरण नहीं छोड़ते, वे धन्य और पुण्यात्मा हैं।

- आश्रम की पुस्तक 'एकादशी व्रत-कथाएँ' से।

अहंकार की खोज

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

एक सम्राट खूब भोग भोगकर अनुभव कर चुका था कि 'संसार में कोई सार नहीं है । इन आँखों को कितने ही रूप दिखाये लेकिन तृप्ति नहीं हुई, जिह्वा को कई रस चखाये लेकिन कोई रस न टिका, इस नासिका को कई इत्र सुँघाये लेकिन कोई सार नहीं दिखा, कानों को कई राग-रागिनियाँ सुनायीं किंतु आसक्ति न मिटी, इस त्वचा को खूब आलिंगन सुख दिलाया किंतु वह सुख भी न टिका...'

ऐसा विवेक जाग्रत होने पर वह सम्राट साधुओं के संग में जाने लगा। धीरे-धीरे उसे सत्संग का रंग लगा । उसका पुत्र बड़ा हुआ तब उसका राज्याभिषेक करके वह किन्हीं साधुपुरुष के चरणों में जा पहुँचा एवं संन्यास की दीक्षा ले ली।

सत्संग में राजा ने सुन रखा था कि अहंकार दुःखरूप है, मन चंचल है। अतः अहंकार को छोड़ो एवं मन को जीतो।

राजा ने यह भी सुन रखा था कि तप ही सर्वस्व है, त्याग ही सर्वस्व है । वह तप करने लगा। अहंकार को मिटाने के लिए उसने बड़े-बड़े व्रत-उपवास किये। इस प्रकार व्रत-उपवास करते-करते उसका शरीर अस्थि-पंजरमात्र रह गया। फिर भी राजा ने देखा कि न मन शांत होता है, न ही अहंकार छूटता है।

अब राजा तीर्थाटन के लिए निकला । वह बिना नमक का सादा भोजन करता, तीर्थों में स्नान करता एवं जपादि करता। फिर भी उसने देखा कि अहंकार बना हुआ है । पहले अहंकार था कि 'मैं बड़ा चक्रवर्ती सम्राट हूँ ।' तो अब अहंकार आ गया है कि 'मैं बड़ा तपस्वी हूँ।'

घूमते-घूमते किसी ब्रह्मवेत्ता महापुरुष की खोज करते-करते आखिर राजा ऋषिकेश से आगे एक एकांत स्थल पर पहुँच गया । वहाँ किन्हीं महापुरुष के चरणों में जाकर उसने प्रार्थना की :

''महाराज ! मैंने नौ साल तक घर में ध्यान-भजन किया, तीन साल से साधु हो गया हूँ, कई व्रत-उपवास-तीर्थयात्राएँ कीं लेकिन यह कमबख्त अहंकार दूर नहीं होता है । पहले अहंकार था कि 'बड़ा सम्राट हूँ।' और अब अहंकार हो गया है कि 'बड़ा साधु हूँ।' मैंने इतना तप किया, इतने व्रत-उपवास किये, इतने कुंभ-स्नान किये...

महाराज ! पहले गृहस्थी का अहंकार था, अब त्यागी होने का अहंकार है । पहले भोगी का भाव था, अब त्यागी का भाव है । अहंकार अभी तक जिंदा है, महाराज !

मैं ज्यों-ज्यों अहंकार को भगाता हूँ त्यों-त्यों वह प्रगाढ़ होता जाता है, ज्यों-ज्यों इलाज करता हूँ त्यों-त्यों मर्ज बढ़ता ही जाता है। गुरुदेव ! अब आप कृपा करके मेरा अहंकार छुड़ा दें।

पहले कोई अनादर करता था तो मैं सत्ता के बल से उसे दंड देता था। अब लोग अनादर करते हैं तो अपने-आपको दंडित करना पड़ता है इससे दुःखी हो जाता हूँ, अशांत हो जाता हूँ। महाराज ! शांति पाने के लिए साधु हुआ था लेकिन मुझे अनुभव हो रहा है कि मेरा अहंकार से वियोग न होने के कारण परमात्मा से योग नहीं हो रहा है।

हे कृपासागर ! आप मेरा अहंकार ले लीजिये। मेरे मन की चंचलता मिटा दीजिये । मुझे असत्य से हटाकर सत्य की ओर ले चलिये। अंधकार से हटाकर प्रकाश की ओर ले चलिये। देहाध्यास से हटाकर आत्मज्ञान की तरफ ले चलिये...''

महात्मा सोचने लगे कि 'राजा जिज्ञासु है। निर्मल पात्र हो चुका है फिर भी शरीर, मन, बुद्धि और अहंकार में ही जी रहा है, उससे पार नहीं

हो पाया है ।'

उन्होंने कहा : ''तू कल सुबह चार बजे आ जाना । साथ में अपने चंचल मन एवं अहंकार को भी ले आना । उसे अपनी कुटिया में मत छोड़ आना ।''

तब साधु बने हुए उस सम्राट ने मन में सोचा : 'महाराज कैसे आश्चर्य की बात करते हैं ! अहंकार कुटिया में छोड़ने की चीज है क्या ? मन को कहीं कुटिया में छोड़ सकते हैं ? वे तो साथ में ही रहते हैं । उन्हें छोड़कर कैसे आऊँगा ?'

सम्राट को आश्चर्य हुआ किंतु कुछ न कहकर प्रणाम करके विदा हुआ ।

दूसरे दिन सुबह चार बजे महात्मा के पास पहुँचना था । तीन बजे स्नानादि करके, शुद्ध वस्त्र पहनकर वह महात्मा की गुफा में पहुँच गया । वहाँ जाकर देखा तो महात्मा हाथ में डंडा लिये खड़े थे !

महात्मा : ''अहंकार और मन को ले आये कि रखकर आये हो ?''

सम्राट : ''महाराज ! सब ले आया हूँ ।''

महात्मा : ''अच्छा, ठीक है । या तो तेरा अहंकार और चंचल मन रहेगा या तो तू रहेगा । आज फैसला हो जायेगा । देख ले डंडा । मुझे अपना अहंकार निकालकर दे दे, चंचल मन निकालकर दे दे । नहीं तो मैं तुझे ही ठीक कर दूँगा ।''

दुर्जन की करुणा बुरी, भलो साँई को त्रास ।
सूरज जब गर्मी करे, तब बरसन की आस ॥

महात्मा ने कड़ी आँखें दिखाते हुए कहा : ''यहाँ बैठ जा और खोज अहंकार को, चंचल मन को और जल्दी से मुझे दे दे ।''

सम्राट : ''महाराज ! अहंकार तो प्राणों से जुड़ा है, शरीर की रग-रग से जुड़ा है ।''

सम्राट बात तो सच्ची कह रहा था... कोई कहता है 'मैं ज्ञानी हूँ ।' कोई कहता है कि 'मैं अज्ञानी हूँ ।' कोई कहता है कि 'मैं पापी हूँ ।' कोई कहता है कि 'मैं पुण्यात्मा हूँ ।' ज्ञानी-अज्ञानी, पापी-पुण्यात्मा आदि सब अहंकार में ही तो होते हैं । इसी प्रकार रिश्ते-नाते भी अहंकार में ही होते हैं । पत्नी भी अहंकार की होती है और पति भी अहंकार का होता है ।

अहंकार न जाने क्या-क्या कर लेता है ! कोई राज्य को अपना मानता है, कोई जाति को अपना मानता है, कोई धर्म को अपना मानता है...

महात्मा : ''अहंकार में ही सारे संस्कार आते हैं । तू मुझे अपना अहंकार दे दे । तेरा चंचल मन दे दे ।''

सम्राट : ''महाराज ! अहंकार को छोड़ना तो चाहता हूँ लेकिन छूटता नहीं है । मैंने लोगों की नजर से तो बहुत त्याग किया, लेकिन जिसका त्याग करने से सर्वत्याग हो जाता है उस अहंकार का त्याग अभी तक नहीं हुआ ।''

महात्मा : ''तू यहाँ आँखें बंद करके बैठ जा और अपना अहंकार खोजकर मुझे दे दे । अब आँखें मत खोलना, नहीं तो डंडा लगाऊँगा ।''

अपने भीतर जाने का मौका कभी-कभी मिलता है । बाहर तुम कितना भी जाओ, कितने भी तीर्थ करो, कितने भी व्रत-उपवास करो, लेकिन जब तक तुम भीतर नहीं गये, अंतरात्मा की गहराई में नहीं गये तब तक यात्रा अधूरी ही रहेगी ।

सम्राट अहंकार खोजने में लग गया । वह खोजता तो है लेकिन अहंकार मिलता नहीं है । खोजते-खोजते देखा कि मन शांत हो गया है और अहंकार तो है ही नहीं । एक ओर सूर्योदय हुआ, सूर्य की किरणें पृथ्वी पर फैलीं और दूसरी ओर ज्ञानरूपी सूर्य की किरण उसके चेहरे पर फैल गयी... उसकी आँखें खुलीं । आँखों से अश्रु बरसाते हुए वह महात्मा के चरणों में गिर पड़ा और बोला : ''महाराज ! शरीर भी नहीं है, मन भी नहीं है, बुद्धि भी नहीं है, अहंकार भी नहीं है...''

महात्मा : ''तू कहता था कि अहंकार परेशान करता है, मन चंचल है तो ला, मुझे दे दे अपना अहंकार और चंचल मन ।''

''जब तक उसे खोजा न था तब तक वह मुझे परेशान कर रहा था । जब उसे खोजा तो वह रहा ही नहीं । महाराज ! यह आपकी ही कृपा का

परिणाम है कि मैं उससे मुक्त हो पाया।''

सच पूछो तो हम हैं ही शुद्ध-बुद्धस्वरूप परमात्मा। अहंकार का कोई अस्तित्व ही नहीं है, लेकिन हमारी बेवकूफी से ही वह हम पर हावी हो जाता है। यदि मिल जायें कोई ब्रह्मवेत्ता महापुरुष, बता दें कोई युक्ति तो फिर उस अहंकार की वास्तविकता को खोज पाना आसान हो जाय और हम सदा के लिए उससे मुक्त हो जायें...

पूज्यश्री के सत्संग, पूजन से सफलता

करोड़ों शिष्यों के जीवन-रथ की बागडोर सँभालनेवाले विश्ववंदनीय संत पूज्य बापूजी से प्रत्यक्ष आशीर्वाद व प्रेरणा पाकर तो लोग जीवन-संग्राम में सफल होते ही हैं, पर उनके विडियो सत्संग से प्रेरणा प्राप्त कर व उनके मंगलमय, प्रेरणादायक फोटो की पूजा-अर्चना कर जीवन-संग्राम में विजयी होनेवालों की भी कमी नहीं है।

पिछले दिनों २३ मार्च को सांसद श्री कमलनाथ पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग का लाभ लेने अमदावाद आश्रम में पहुँचे थे। पूज्य बापूजी के जन्मोत्सव पर १० अप्रैल को वे छिंदवाड़ा आश्रम में भी पहुँचे। जन्मोत्सव के निमित्त आयोजित पूज्यश्री के विडियो सत्संग में वे शरीक हुए और प्रेरणा प्राप्त की। पूज्य बापूजी के करकमलों द्वारा लगाये गये मनोकामना सिद्ध करनेवाले बड़ बादशाह की भी उन्होंने परिक्रमा की और छिंदवाड़ा चुनाव-क्षेत्र से विजयी हुए।

सर्वोच्च न्यायालय के विख्यात वकील श्री कपिल सिब्बल भी दिल्ली आश्रम में पूज्यश्री के जन्मोत्सव पर आयोजित विडियो सत्संग में १ घंटे तक तन्मय रहे। सत्संग के पश्चात् उन्होंने व्यासपीठ पर विराजित पूज्यश्री के फोटो की श्रद्धावनत होकर आरती उतारी।

इन दिनों शीर्ष नेता परोक्षरूप से पूज्यश्री के आशीर्वाद प्राप्त कर चुनावी रणभूमि में विजयी हुए और विजयोपरांत उन्होंने सद्गुरुदेव के प्रति अपने श्रद्धा-विश्वास का इजहार किया।

धन्य हैं ऐसे गुरुभक्त !

* संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से *

''भाई ! तुझे नहीं लगता कि गुरुदेव हम सबसे ज्यादा शिवाजी को चाहते हैं ? शिवाजी के कारण हमारे प्रति उनका यह पक्षपात मेरे अंतर में शूल की नाईं चुभ रहा है।''

समर्थ रामदास स्वामी का एक शिष्य दूसरे शिष्य से इस तरह की गुफ्तगू कर रहा था।

''हाँ, बंधु ! तेरी बात शत-प्रतिशत सच्ची है। शिवाजी राजा हैं, छत्रपति हैं इसीलिए समर्थ हम सबसे ज्यादा उन पर प्रेम बरसाते हैं। इसमें हमको कुछ गलत नहीं लगना चाहिए।''

शिष्य तो इस तरह की बातें करके अपने-अपने काम में लग गये, लेकिन इन दोनों का यह वार्तालाप अनायास ही समर्थ रामदास स्वामी के कानों में पड़ गया था। समर्थ ने सोचा कि 'उपदेश से काम नहीं चलेगा, इनको प्रयोगसहित समझाना पड़ेगा।'

एक दिन समर्थ ने लीला की। वे शिष्यों को साथ लेकर जंगल में घूमने गये। चलते-चलते पूर्वनियोजन के अनुसार राह भूलकर घोर जंगल में इधर-उधर भटकने लगे। सब जंगल से बाहर निकलने का रास्ता ढूँढ़ रहे थे, तब अचानक समर्थ को उदर-शूल उठा। पीड़ा असह्य होने से समर्थ ने शिष्यों को आसपास में कोई आश्रय-स्थान ढूँढ़ने को कहा।

जाँच करने पर थोड़ी दूर एक गुफा मिल गयी। शिष्यों के कंधे के सहारे चलते हुए किसी तरह

समर्थ उस गुफा तक पहुँच गये । गुफा में प्रवेश करते ही समर्थ जमीन पर लेट गये एवं पीड़ा से कराहने लगे । शिष्य उपाय की उलझन में खोयी-सी स्थिति में समर्थ की सेवा-सुश्रूषा करने लगे ।

सभीने मिलकर गुरुदेव से इस पीड़ा का इलाज पूछा ।

समर्थ ने कहा : ''इस रोग की एक ही औषधि है - शेरनी का दूध ! लेकिन इसे लाना माने मौत को निमंत्रण देना !'' अब उदर-शूल मिटाने के लिए शेरनी का दूध कहाँ से लायें और लाये कौन ? सब एक-दूसरे का मुँह ताकते हुए सिर पकड़कर बैठे गये ।

उसी समय शिवाजी को अपने गुरुदेव समर्थ के दर्शन करने की इच्छा हुई । आश्रम पहुँचने पर उन्हें पता चला कि गुरुदेव तो शिष्यों को साथ लेकर कबसे जंगल की ओर गये हैं । गुरुदर्शन के लिए शिवाजी की तड़प तीव्र हो उठी । अंततः शिवाजी ने समर्थ के दर्शन न होने तक बिना अन्न-जल के रहने का निश्चय किया और समर्थ की तलाश में सैनिकों की एक टोली के साथ जंगल की ओर चल पड़े ।

खोजते-खोजते शाम हो गयी किंतु उन्हें समर्थ के दर्शन नहीं हुए । देखते-ही-देखते अँधेरा छा गया । जंगली जानवरों की डरावनी आवाजें सुनायी पड़ने लगीं, फिर भी शिवा **'गुरुदेव ! माझी माऊली ऽऽऽ'** ऐसा पुकारते हुए आगे बढ़ते गये । अब तो सैनिक भी मन-ही-मन खिन्न हो गये परंतु शिवाजी की गुरु-मिलन की व्याकुलता के आगे वे कुछ भी कहने की हिम्मत नहीं कर सके । आखिर सैनिक भी पीछे रह गये परंतु शिवा को इस बात की चिंता नहीं थी । उन्हें तो गुरुदर्शन की तड़प थी । घोड़े पर सवार शिवा हाथ में मशाल लिये आगे बढ़ते ही रहे ।

मध्यरात्रि हो गयी । कृष्णपक्ष की अँधेरी रात्रि में जंगली जानवरों के चलने-फिरने के शब्द सुनायी पड़ने लगे । इतने में शिवाजी ने शेर की दहाड़ सुनी । वे रुक गये । कुछ समय तक जंगल में दहाड़ की प्रतिध्वनि गूँजती रही और फिर सन्नाटा छा गया । इतने में एक करुण स्वर वन में गूँजा : 'अरे भगवान ! हे रामराया ऽऽऽ... मुझे इस पीड़ा से बचाओ ।'

'यह क्या ! यह तो गुरु समर्थ की वाणी है !' शिवाजी आवाज तो पहचान गये परंतु सोच में पड़ गये कि 'समर्थ जैसे महापुरुष ऐसा करुण क्रंदन कैसे कर सकते हैं ? वे तो शरीर के सम्बंध से पार पहुँचे हुए समर्थ योगी हैं ।'

शिवाजी को संशय ने घेर लिया । इतने में फिर से उसी ध्वनि का पुनरावर्तन हुआ । शिवाजी ने ध्यानपूर्वक सुना तो पता चला कि वे जिस पहाड़ी के नीचे हैं, उसीके शिखर से यह करुण ध्वनि आ रही है । पहाड़ी पर चढ़ने के लिए कहीं से भी कोई रास्ता नहीं था । शिवाजी घोड़े से उतरे और अपनी तलवार से कँटीली झाड़ियों को काटकर रास्ता बनाते हुए आखिर गुफा तक पहुँच गये ।

शिवाजी को अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ, जब उन्होंने समर्थ को पीड़ा से कराहते और लोटपोट होते देखा । शिवा की आँखें आँसुओं से छलक उठीं । वे मशाल को एक तरफ रखकर समर्थ के चरणों में गिर पड़े । समर्थ के शरीर को सहलाते हुए शिवाजी ने पूछा : ''गुरुदेव ! आपको यह कैसी पीड़ा हो रही है ? आप इस घने जंगल में कैसे ? गुरुदेव ! कृपा करके बताइये ।''

समर्थ कराहते हुए बोले : ''शिवा ! तू आ गया ? मेरे पेट में जैसे शूल चुभ रहे हों ऐसी असह्य वेदना हो रही है रे...''

''गुरुदेव ! आपको तो धन्वंतरि महाराज भी हाजरा-हजूर हैं । अतः आप इस उदर-शूल की औषधि भी जानते ही होंगे । मुझे औषधि का नाम कहिये । शिवा आकाश-पाताल एक करके भी वह औषधि ले आयेगा ।''

''शिवा ! यह तो असाध्य रोग है । इसकी कोई औषधि नहीं । हाँ, एक औषधि से राहत जरूर मिल सकती है लेकिन जाने दे । इस बीमारी का एक ही इलाज है और वह भी अति दुर्लभ है । मैं उस दवा के लिए ही यहाँ आया था, लेकिन अब तो चला भी नहीं जाता । दर्द बढ़ता ही जा रहा है ।''

शिवा को अपने-आपसे ग्लानि होने लगी कि 'गुरुदेव लम्बे समय से ऐसी पीड़ा सहन कर रहे हैं और मैं राजमहल में बैठा था। मुझे धिक्कार है ! धिक्कार है !!' अब शिवा से रहा न गया। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा : ''नहीं गुरुदेव ! शिवा आपकी यातना नहीं देख सकता। आपको स्वस्थ किये बिना मेरी अंतरात्मा शांति से नहीं बैठेगी। मन में जरा भी संकोच रखे बिना मुझे इस रोग की औषधि के बारे में बतायें। गुरुदेव ! मैं लेकर आता हूँ वह दवा।''

समर्थ ने कहा : ''शिवा ! इस रोग की एक ही औषधि है - शेरनी का दूध ! लेकिन उसे लाना माने मौत को निमंत्रण देना। **शिवा ! हम तो ठहरे अरण्यवासी। आज यहाँ हैं तो कल कहाँ होंगे, कुछ पता नहीं। परंतु तुम तो राजा हो। लाख गये तो चलेगा परंतु लाखों का रक्षक जिन्दा रहना चाहिए।''**

''गुरुदेव ! जिनकी कृपादृष्टि मात्र से हजारों शिवा तैयार हो सकते हैं, ऐसे समर्थ सद्गुरु की सेवा में एक शिवा की कुर्बानी हो भी जाय तो कोई बात नहीं। मुगलों के साथ लड़ते-लड़ते मौत के साथ सदैव जूझता आया हूँ, गुरुसेवा करते-करते मौत आ जायेगी तो मृत्यु भी महोत्सव बन जायेगी। गुरुदेव आपने ही तो सिखाया है कि आत्मा कभी मरती नहीं और नश्वर देह को तो एक बार जला ही देना है। ऐसी देह का मोह कैसा ? गुरुदेव ! मैं अभी शेरनी का दूध लेकर आता हूँ।''

'क्या होगा ? कैसे मिलेगा ?' अथवा 'ला सकूँगा या नहीं ?'- ऐसा कुछ सोचे बिना शिवाजी गुरु को प्रणाम करके पास में पड़ा हुआ कमंडलु लेकर चल पड़े। सत्शिष्य की कसौटी करने प्रकृति ने भी मानों, कमर कसी और आँधी-तूफान के साथ जोरदार बारिश शुरू हुई। बरसते पानी में शिवाजी दृढ़ विश्वास के साथ चल पड़े शेरनी को ढूँढ़ने।

लेकिन क्या यह इतना आसान था ? मौत के पंजे में प्रवेश कर वहाँ से वापस आना कैसे संभव हो सकता है ? परंतु शिवाजी को तो गुरुसेवा की धुन लगी थी। उन्हें इन सब बातों से क्या लेना-देना ? प्रतिकूल संयोगों का सामना करते हुए नरवीर शिवा आगे बढ़ रहे थे।

जंगल में बहुत दूर जाने पर शिवा को अँधेरे में चमकती हुई चार आँखें दिखीं। शिवा उनकी ओर आगे बढ़ने लगे। उनको अपना लक्ष्य दिख गया। वे समझ गये कि ये शेरनी के बच्चे हैं, अतः शेरनी भी कहीं पास में ही होगी। **शिवाजी प्रसन्न थे। मौत के पास जाने में प्रसन्न ! एक सत्शिष्य के लिए उसके सद्गुरु की प्रसन्नता से बड़ी चीज संसार में और क्या हो सकती है ? इसीलिए शिवा प्रसन्न थे।**

शिवा के कदमों की आवाज सुनकर शेरनी के बच्चों ने समझा कि उनकी माँ है परंतु शिवा को अपने बच्चों के पास चुपके-चुपके जाते देखकर पास में ही बैठी शेरनी क्रोधित हो उठी। उसने शिवा पर छलाँग लगायी परंतु कुशल योद्धा शिवा ने अपने को शेरनी के पंजे से बचा लिया। फिर भी उनकी गर्दन पर शेरनी के दाँत अपना निशान छोड़ चुके थे।

परिस्थितियाँ विपरीत थीं। शेरनी क्रोध से जल रही थी। उसका रोम-रोम शिवा के रक्त का प्यासा बना हुआ था परंतु शिवा का निश्चय अडिग था। वे अब भी हार मानने को तैयार नहीं थे क्योंकि समर्थ सद्गुरु के सत्शिष्य जो ठहरे !

शिवा शेरनी से प्रार्थना करने लगे कि **'हे माता ! मैं तेरे बच्चों का अथवा तेरा कुछ बिगाड़ने नहीं आया हूँ। मेरे गुरुदेव को हो रहे उदर-शूल में तेरा दूध ही एकमात्र इलाज है। मेरे लिए गुरुसेवा से बढ़कर इस संसार में दूसरी कोई वस्तु नहीं। हे माता ! मुझे मेरे सद्गुरु की सेवा करने दे। तेरा दूध दुहने दे।'**

पशु भी प्रेम की भाषा समझते हैं। शिवाजी की प्रार्थना से एक महान आश्चर्य घटित हुआ - शिवाजी के रक्त की प्यासी शेरनी उनके आगे गौमाता बन गयी ! शिवाजी ने शेरनी के शरीर पर प्रेमपूर्वक हाथ फेरा और अवसर पाकर वे शेरनी

का दूध निकालने लगे । शिवाजी की प्रेमपूर्वक प्रार्थना का कितना प्रभाव ! दूध लेकर शिवा गुफा में आये ।

समर्थ : ''आखिर तू शेरनी का दूध भी ले आया, शिवा ! जिसका शिष्य गुरुसेवा में अपने जीवन की बाजी लगा दे, प्राणों को हथेली पर रखकर मौत से जूझे, उसके गुरु को उदर-शूल कैसे रह सकता है ? मेरा उदर-शूल तो जब तू शेरनी का दूध लेने गया, तभी अपने-आप शांत हो गया था । शिवा तू धन्य है ! धन्य है तेरी गुरुभक्ति ! तेरे जैसे एकनिष्ठ शिष्य से मैं गौरव का अनुभव करता हूँ ।'' ऐसा कहकर समर्थ ने शिवाजी के प्रति ईर्ष्या रखनेवाले उन दो शिष्यों के सामने अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा । 'गुरुदेव शिवाजी को अधिक क्यों चाहते हैं ?'- इसका रहस्य उनको समझ में आ गया । उनको इस बात की प्रतीति कराने के लिए ही गुरुदेव ने उदर-शूल की लीला की थी, इसका उन्हें ज्ञान हो गया ।

अपने सद्गुरु की प्रसन्नता के लिए अपने प्राणों तक को बलिदान करने का सामर्थ्य रखनेवाले शिवाजी धन्य हैं ! धन्य हैं ऐसे सत्शिष्य ! जो सद्गुरु के हृदय में अपना स्थान बनाकर अमर पद प्राप्त कर लेते हैं...

धन्य है भारतमाता ! जहाँ ऐसे सद्गुरु और सत्शिष्य पाये जाते हैं ।

गुरु बिल्कुल हिचकिचाहट से रहित, निःशेष एवं संपूर्ण आत्मसमर्पण के सिवाय और कुछ नहीं चाहते । गुरु को जितनी अधिक मात्रा में आत्मसमर्पण करोगे, उतनी अधिक गुरुकृपा प्राप्त करोगे । शिष्य का कर्तव्य है गुरु के प्रति प्रेम रखना एवं गुरु की सेवा करना ।

सद्गुरु के श्रीचरणों में श्रद्धा और भक्तिभाव – ये दो पंख हैं, जिनकी सहायता से शिष्य पूर्णता के शिखर पर पहुँचने में शक्तिमान बनता है ।

– 'गुरुभक्तियोग' से

परमार्थ-प्रश्नोत्तरी

प्रश्न : उत्तम श्रद्धा क्या है ?

उत्तर : सद्गुरु एवं सत्शास्त्र के उपदेश पर संशयरहित विश्वास उत्तम श्रद्धा है । ऐसी उत्तम श्रद्धावाला व्यक्ति ही परमात्मा की अनन्य भक्ति प्राप्त कर सकता है । सद्गुरु एवं सत्शास्त्र विरुद्ध विचारों एवं कर्मों से दूर रहकर शुभ कर्मों में संलग्न रहें । प्रभु से सुखदायिनी श्रद्धा के लिए प्रार्थना करें ।

प्रश्न : मंत्रदीक्षा लेते समय जितनी श्रद्धा होती है, वह साधना के मार्ग पर चलते हुए बाद में कम क्यों होती जाती है ? श्रद्धा यथावत् बनी रहे, इसके लिए किन विघ्नों से बचना चाहिए ? श्रद्धा की डोर कभी न टूटे, इसके लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर : जब हम साधना-मार्ग में प्रविष्ट होते हैं, तब गुरु के द्वारा बतायी गयी साधना-विधि को उत्साह से करते हैं, लेकिन साधना का वह उत्साह बनाये नहीं रख पाते । इसलिए श्रद्धा भी कम होने लगती है । यदि उत्साहपूर्वक साधना को ठीक से बढ़ाते रहें तो श्रद्धा भी विकसित होती जायेगी ।

श्रद्धा मन का विषय है और मन चंचल है । अतः मनुष्य जब सत्त्वगुण में होता है, तब श्रद्धा पुष्ट होती है । सत्त्वगुण बढ़ाने के लिए सात्त्विक आहार करें, सात्त्विक एवं सत्संग के वातावरण में रहें । मन-बुद्धि पर विवेक का अंकुश रखें । विवेक जगने पर संतों में श्रद्धा बढ़ जाती है ।

अपनी श्रद्धा को बनाये रखने एवं विकसित करने के लिए शुद्ध, पवित्र व शाकाहारी आहार का सेवन करें । यदि आहार-दोष के कारण मन में थोड़ी भी मलिनता आती है तो श्रद्धा घटने लगती है ।

संग का रंग अवश्य लगता है, अतः आप जैसा बनना चाहते हैं वैसे लोगों का प्रयत्नपूर्वक

संग करें। तदनुरूप सत्शास्त्रों का अध्ययन करें।

संतों के जीवन-चरित्र पढ़ने से श्रद्धा बढ़ती है। पूर्वकाल में ईश्वरप्राप्ति का रास्ता तय कर चुके महापुरुषों के जीवन-चरित्र श्रद्धा और साधना में उत्साह भरेंगे। वे श्रद्धा की रक्षा करने तथा साधना बढ़ाने में सहायक होते हैं।

प्रश्न : वाणी के संयम के लिए क्या उपाय करें ?

उत्तर : वाणी के देवता अग्निदेव बहुत तीक्ष्ण स्वभाववाले हैं, जिसके कारण वाणी बहुत ही बाह्य वेगवाली होती है। उसका निरर्थक वेग बहुत रहता है। निरर्थक बोलने से वाणी का प्रभाव क्षीण हो जाता है। वाणी के संयम के लिए रोज कुछ घंटे मौन रहने का अभ्यास करें।

अति बोलने और अति सोने की आदत पर नियंत्रण करके उस समय का उपयोग एकाग्रता एवं गुरुप्रदत्त साधना के अभ्यास में लगायें तो थोड़े ही महीनों में आपकी बहुत ऊँची यात्रा हो जायेगी।

क्या आप जानते हैं ?

* घर की किसी भी दिशा में तुलसी लगाना शुभ व आरोग्यरक्षक है। तुलसी-पत्र में जठराग्नि प्रदीप्त करने, हृदय को मजबूत बनाने, शूल और दुर्गन्ध नष्ट करने, स्मरणशक्ति बढ़ाने तथा रक्त को साफ करने के उत्तम गुण हैं।

तो आज से ही रोज सुबह खाली पेट तुलसी के ५-७ पत्ते खूब चबाकर खाना और ऊपर से ताँबे के बर्तन में रात का रखा एक गिलास पानी पीना शुरू कर दीजिये। पानी ऐसे पीजिये कि चबायी हुई तुलसी के कण दाँतों के बीच न रह जायें।

* पाँच सफेद जहरों में एक शक्कर को गिना गया है। इसको बनाने की रासायनिक प्रक्रिया के अंत में मिठास के सिवाय पौष्टिक तत्त्व बचता ही क्या है ? गुड़ की अपेक्षा यह पचने में भारी है। गुड़ को पानी में घोलकर लेने से थकावट कम होती है।

* पद्मासन के नियमित अभ्यास से जड़ता, आलस्य दूर होता है। इस आसन में बैठकर नीचेवाले जबड़े के मध्य के दाँतों के मूल में जीभ की नोक लगाने से सब प्रकार की बीमारियों में आराम मिलता है।

स्वास्थ्य-कणिकाएँ

* प्रसन्न व खिला चेहरा, कसा शरीर, स्वच्छ दाँत, बिना थके परिश्रम करने की क्षमता, उमंग, सर्दी-गर्मी सहन करने की शक्ति, चमकीले नेत्र व तेज दृष्टि, साफ जीभ, पतली कमर, चौड़ी छाती, पेट छाती से उभरा न हो, गंधरहित श्वास एवं पसीना, गहरी नींद, मुख का स्वाद अच्छा, मल बँधा हुआ जो सरलता से शीघ्र विसर्जित हो जाय, प्रातः उठने पर ताजगी, पेट नर्म, सिर ठंडा, पैर गर्म, होंठ व नाखून गुलाबी आदि उत्तम स्वास्थ्य की पहचान हैं।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

'दुःखों का नाश करनेवाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करनेवाले का, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करनेवाले का और यथायोग्य सोने तथा जागनेवाले का ही सिद्ध होता है।'

(श्रीमद्भगवद्गीता : ६.१७)

अर्थात् खाना-पीना, सोना-जागना, शौच-स्नान, श्रम-विश्राम आदि सारे कार्य मर्यादा, सामर्थ्य और ऋतु के अनुसार उचित समय पर किये जायें, तभी योग दुःखनाशक होता है।

*** सभी रोगों के मूल कारण तीन ही हैं :**

विषयों का अति योग, मिथ्या योग अथवा अयोग।

विषयों का शक्ति व मर्यादा से अधिक सेवन अति योग है। विधि-निषेध का पालन न करके विषयों का विपरीत सेवन मिथ्या योग है। विषयों का बिल्कुल ही सेवन न करना अयोग है।

पाँचों इन्द्रियों के विषयों के सेवन की गलतियों के कारण ही मनुष्य रोगी होता है। अतः सावधान !

※ त्रय उपस्तम्भा इत्याहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति ।

'आहार, निद्रा व ब्रह्मचर्य स्वस्थ, सुखी व सुसंपन्न जीवन के तीन उपस्तम्भ माने गये हैं ।'

(चरक संहिता, सूत्रस्थानम् : ११.३५)

इनके युक्तिपूर्वक एवं समुचित सेवन से स्वास्थ्य की सुरक्षा होती है तथा शरीर उपस्तब्ध अर्थात् स्थिरता को प्राप्त होकर सार्थक होता है। इसीलिए इन्हें उपस्तम्भ कहा गया है ।

※ आहारसंभवं वस्तु रोगाश्चाहारसंभवाः ।

'मनुष्य का शरीर एवं रोग - दोनों आहार से ही उत्पन्न होते हैं ।' **(चरक संहिता, सूत्रस्थानम् : २८.४५)**

अन्न प्राणियों का प्राण है । आहार से बल, वर्ण तथा ओज की प्राप्ति होती है । प्रिय होने के कारण अथवा अज्ञान से अहितकर आहार का सेवन नहीं करना चाहिए। हितकर और अहितकर कार्यों की परीक्षा करके जो हितकर कार्य करते हैं, शास्त्रों में उन्हें विद्वान कहा गया है और जो अहितकर कार्य करते हैं उन्हें मूर्ख ।

※ बुद्धिमान मनुष्यों के गुण :

(१) शास्त्राध्ययन (२) सद्-असद्-विवेकिनी बुद्धि (३) स्मरणशक्ति (४) कार्यदक्षता (५) धारणाशक्ति (६) हितकर वस्तुओं का ही सेवन (७) वाणी की शुद्धता (८) शांति (९) धैर्य।

ये नौ गुण बुद्धिमानों में रहते हैं । रजो और तमो गुण से जिनकी बुद्धि आच्छादित है, उनमें ये गुण नहीं रहते । रजो और तमो गुण के कारण उनका शरीर अनेकों शारीरिक एवं मानसिक रोगों का आश्रयस्थान बन जाता है । जिन लोगों की बुद्धि ज्ञान के प्रकाश से स्वच्छ हो गयी है, ऐसे बुद्धिमान पुरुष तात्कालिक सुखकर परंतु परिणाम में दुःखकर भावों का सेवन नहीं करते ।

पूज्यश्री का आगामी कार्यक्रम

हरिद्वार : १ से ३ जून । पंत द्वीप, हर की पौड़ी ।
फोन : (०१३३४) २६१२५९, ९८९७२४९७३६.

पूर्णिमा दर्शन : ३ जून, हरिद्वार में ।

इष्ट मजबूत हो तो अनिष्ट नहीं होता

संत श्री आसारामजी बापू को कोटि-कोटि नमन ।

२२ अप्रैल की रात को बिहार के लक्खिसराय जिले के रहाटपुर ग्राम के एक किसान रामहरि सिंह को कुछ अज्ञात अपराधी उनके घर से उठाकर ले गये । २३ अप्रैल को उनके परिजनों ने हमारे लक्खिसराय स्थित आवास पर आकर इस सम्बंध में हमें जानकारी दी । रामहरि सिंह के परिजनों की दयनीय स्थिति देखकर हम काफी व्याकुल हो उठे । २४ अप्रैल की सुबह मैं और उनके परिजन पप्पू सिंह अज्ञात अपराधियों के बारे में पता लगाने के लिए एवं उनसे रामहरि सिंह को सकुशल छुड़ाने के लिए लक्खिसराय के दियारा इलाके में गये । कई गाँवों में गुप्त छानबीन करने के पश्चात् अपराधियों और रामहरि सिंह के बारे में पुख्ता जानकारी हासिल कर मोटर साइकिल के द्वारा हम लोग वापस आ रहे थे । जैसे ही हम लोदिया ग्राम के पास पहुँचे कि पहले से घात लगाये बैठे अपराधियों ने हम पर गोलियों की बौछार कर दी । पाँच गोलियाँ मेरे सीने में लगीं और मैं गिर गया । मेरे गिरने के बाद भी अपराधी गोलियाँ चला रहे थे । अपने बचने की कोई उम्मीद न देख एवं अपना अंत समय जानकर मैंने गुरुदेव को याद किया और मुझे तत्क्षण वे शब्द याद आ गये, जो गुरुदेव ने दीक्षा देते समय कहे थे कि 'जिसका इष्ट मजबूत हो उसका कभी अनिष्ट नहीं होता और इष्ट अधिक-से-अधिक श्रद्धापूर्वक जप करने से मजबूत होते हैं ।' मैं उसी

हालत में श्वासोच्छ्वास की तालबद्ध गति के साथ गुरुमंत्र का जप करने लगा।

मंत्रजप करने से मुझे मेरे दर्द का एहसास नहीं हो रहा था। दस गोलियाँ मेरे संवेदनशील अंगों में उतारकर और मुझे मरा जानकर अपराधी चले गये। मैं निःसहाय अवस्था में गुरुमंत्र का जप करता रहा। लगभग डेढ़ घंटे के पश्चात् हमारे परिवारवालों को इस घटना की जानकारी मिली और वे लोग रोते-बिलखते हमारे पास आये। इतनी गोलियाँ लगने के बावजूद भी गुरुकृपा से मैं बिल्कुल होश में था। मैंने परिवारवालों को ढाढ़स बँधाया। वे मुझे उठाकर पटना के अस्पताल में ले गये। घटना के लगभग २६ घंटे बाद वहाँ मेरा सफल ऑपरेशन किया गया एवं सारी गोलियाँ मेरे शरीर से निकाल दी गयीं। गुरुदेव की कृपा से अब मैं धीरे-धीरे स्वस्थ हो गया हूँ।

मैं गुरुदेव का सदा आभारी रहूँगा कि उन्होंने मुझे जीवनदान दिया। धन्य हूँ मैं और मेरे परिवारवाले, जिन्हें ऐसे गुरुदेव मिले !

- अरुण प्रसाद सिंह

ग्रा.,पो.-वलीपुर, जि. लक्खिसराय (बिहार).

(नोट : इससे सम्बंधित चिकित्सा-रिपोर्ट्स भी हमारे पास हैं।)

* त्रय
ब्रह्मचर्यमिति
'आहार
सुसंपन्न जीव
(
इनके
स्वास्थ्य की
अर्थात् स्थिर
इसीलिए इन्हे
* आहारस
'मनुष्य
ही उत्पन्न हो
अन्न प्र
वर्ण तथा ओ
कारण अथव
सेवन नहीं क
कार्यों की प
हैं, शास्त्रों में
अहितकर क
* बुद्धिमान
(१) शास्त्रा
बुद्धि (३)
(५) धारणा
सेवन (७) व
ये नौ गु
तमो गुण से
ये गुण नहीं
उनका शरीर
का आश्रयस्
बुद्धि ज्ञान के
बुद्धिमान पु
परिणाम में दु

पूज्यश्री
हरिद्वार :
फोन : (०१

पूर्णिमा

संस्था समाचार

महाकाल की नगरी उज्जैन (म.प्र.) में चैत्री पूर्णिमा, वैशाखी पूर्णिमा तथा ३ चरणों में 'ध्यान योग साधना शिविर' सम्पन्न हुआ । पूर्णिमा व्रतधारियों की विशाल संख्या व सुविधा को दृष्टि में रखते हुए करुणामूर्ति पूज्य बापूजी ने दो स्थानों पर वैशाखी पूर्णिमा दर्शनोत्सव का कार्यक्रम दिया। वैशाख मास की तपती धूप में भक्तों को लम्बी यात्रा से बचाने हेतु २ से ४ मई के साधना शिविर व पूर्णिमा दर्शन महोत्सव के बाद भक्तवत्सल बापूजी स्वयं रजोकरी आश्रम पहुँच गये।

रजोकरी आश्रम (दिल्ली) : ५ मई को यहाँ पूर्णिमा दर्शन महोत्सव एवं सत्संग सम्पन्न हुआ। यहाँ उत्तर भारत व आसपास के राज्यों से आये पूर्णिमा व्रतधारियों ने दर्शन-सत्संग प्राप्त कर प्रसाद लिया।

देहरादून (उत्तरांचल) : १४ से १६ मई का समय देहरादून के सत्संगियों के नाम रहा। उत्तरांचल की इस राजधानी में विशाल श्रद्धालु समुदाय एवं गणमान्य सज्जनों के अलावा प्रांत के कई चोटी के राजनेता भी मंगलमूर्ति, योगनिष्ठ पूज्य बापूजी के सत्संग-कार्यक्रम में पहुँचे और सर्वहितकारी व आत्मानंदप्रदायी अनुभवामृत का मंत्रमुग्ध होकर रसपान किया। राज्य के मुख्यमंत्री श्री नारायणदत्त तिवारी ने श्रद्धावनत होकर निम्न उद्‌गार व्यक्त किये :

''विश्व के सभी धर्मों के निष्कर्षों को अपनी वाणी में प्रतिस्थापित करनेवाले धर्म-मर्मज्ञ, कर्मयोगी, ध्यानयोगी और प्रतिदिन जिनके उपदेशामृत से जन-जन प्रेरित होता है - ऐसे हमारे दिग्दर्शक, युग-दिग्दर्शक, परम सम्माननीय, परम श्रद्धेय, देवभूमि में पधारे हुए शिरोमणि संत श्री आसारामजी बापू ! महामहिम, मैं किन शब्दों में आपका स्वागत करूँ ? यह राजकाज का कर्म बड़ा ही दुष्कर और कभी-कभी अपने आध्यात्मिक कर्तव्यों से च्युत करनेवाला बोझा होता है। उत्तर प्रदेश में मुझे आपने चार बार आशीर्वाद दिये। मुझे आपके प्रेरणास्पद शब्द बड़ी शक्ति दे रहे हैं, देते रहेंगे। मैं आपका ऋणी हूँ। मैं उन्नासी साल का हो गया हूँ। इसलिए जो भी जीवन के शेष दिन हैं, वे आप जैसे महापुरुषों के, योगिराज के आशीर्वाद से देशसेवा में, मानव-सेवा में पूरे कर सकूँ - यही प्रार्थना है।''

जैसे ही श्री तिवारी ने अपनी वाणी को विराम दिया, पूज्य बापूजी ने तुरंत चुटकी लेते हुए कहा कि ''अध्यात्म की ओर झुकाव के कारण हो सकता है कि मैं नारायणदत्त तिवारी को उत्तरांचल की जनता से चुरा लूँ।''

मुख्यमंत्री को संबोधित करते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''तुम गुलाब होकर महको और तुम्हें सांसारिक सफलता के साथ परम सफलता भी मिले।''

पूर्व मुख्यमंत्री श्री नित्यानंद स्वामी
पूज्यश्री का माल्यार्पण कर उनके प्रति अपनी श्र
व्यक्त की व आशीर्वाद प्राप्त किया। उन्होंने कहा
''श्रद्धेय बापूजी चौथी बार इस देवभूमि
अमृतवर्षा कर रहे हैं। इनकी वाणी का प्रत्येक शब्द जब क
कर्णगोचर होता है तो हृदय के अंतःस्थ तक उतर जाता है
इनका ज्ञान और गंभीरता समुद्र के समान अपार है त
इनका व्यक्तित्व हिमालय की चोटी के समान ऊँचा है
इन्होंने अपना सारा जीवन देकर इस भारत देश को, विश्व
समुदाय को जागृत किया है। पूज्य बापूजी ने जो विचार दि
हैं वे भारत में ही नहीं बल्कि विश्व में पूजे जाते हैं। हम
भगवान से यही प्रार्थना करते हैं कि पूज्य बापूजी चिरक
तक स्वस्थ एवं चिरंजीवी रहें। हम लोगों को इनके आशीव
मिलते रहें और हम अपनी व्यक्तिगत मोहमाया को छोड़
इनका सात्त्विक, आध्यात्मिक प्रवचन आत्मसात् करें। इ
प्रार्थना के साथ भगवान और पूज्य बापूजी के श्रीचरण
मैं वंदन करता हूँ।''

राज्य के राज्यपाल श्री सुदर्शन अग्रवाल १६ मई
शाम ६ से ७ बजे तक पूज्यश्री की सारगभि
लोकमांगल्यकारी, मधुर अमृतवाणी के रसास्वादन
सराबोर रहे। आयोजकों ने उनके बैठने के लिए श्रोताद
में आरामदायी कुर्सी की व्यवस्था कर रखी थी, ले
उन्होंने कुर्सी का मोह ठुकराया और सद्गुरुदेव को व
करते हुए नीचे ही बैठ गये - आम श्रोताओं की तरह ! उन
अपने भाषण में कहा : ''परम श्रद्धेय बापूजी ! मैं सबसे प
आपश्री का स्वागत करता हूँ। देवभूमि उत्तरांचल
देहरादून नगरी में आयोजित इस सत्संग-कार्यक्रम में
लेकर मुझे बहुत आनंद हुआ। बापूजी ! देश के कोने-
के साधक आपके उच्च विचारों से प्रेरणा लेकर अपने ज
को एक आदर्श जीवन बनाने में प्रयत्नशील रहते हैं।
एक युगपुरुष हैं। मैं आपसे विनम्र अनुरोध करूँगा कि
इस देश के लोगों को एक नयी दिशा दिखायें। आज ला
करोड़ों जनसाधारण के मौलिक अधिकारों का हनन
रात हो रहा है। आप समाज में एक क्रांति ला सकते
अपने-आपको बहुत कृतार्थ समझता हूँ कि मैं आप
चरणों में हाजिर हो सका और बैठके आपश्री को श्रद्धा
सका।'' पूर्व मुख्यमंत्री श्री भगतसिंह कोश्यारी, विध
दिनेश अग्रवाल, भाजपा प्रदेश कोषाध्यक्ष नरेन्द्रस
मित्तल ने भी पूज्य बापूजी को माल्यार्पण किया व सत
लाभ लिया।

जी हाँ ! यहाँ दिख तो रहा है कुंभ-सा दृश्य किंतु यह देहरादून (उत्तरांचल) में आयोजित पूज्यश्री के सत्संग हेतु उमड़ा हुआ जनसैलाब है।

पूज्यश्री के दर्शन व सत्संग का लाभ लेते हुए उत्तरांचल के...

राज्यपाल श्री सुदर्शन अग्रवाल
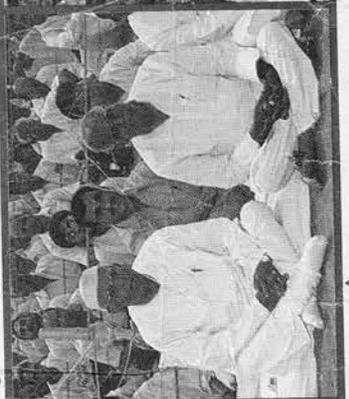
मुख्यमंत्री श्री नारायणदत्त तिवारी

भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री भगतसिंह कोश्यारी

भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री नित्यानंद स्वामी

R.N.I. NO. 48873/91 POSTAL REGISTRATION. NO. GUJ-1132. LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENSE NO. 207. POSTING FROM AHMEDABAD 2-15 OF EVERY MONTH. ✲ BYCULLA STG. WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. 236. REGD NO. TECH/47 833/MBI/2003-
POSTING FROM MUMBAI 9 & 10 OF EVERY MONTH. ✲ FOREIGN POSTING 5 & 6 OF EVERY MONTH FROM AIRPORT P.O. - 40009. ✲ DELHI REGD NO. DL-11513/2003-05 WITHOUT PRE-PAYMENT 232/2003-05 POSTING FROM DELHI 5 & 6 OF EVERY MONTH